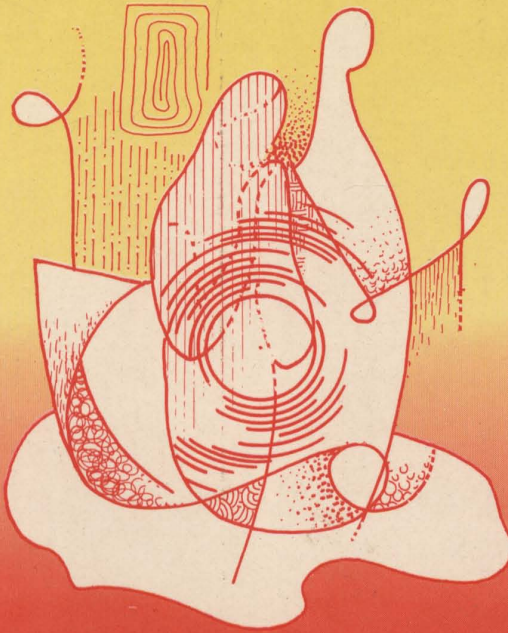


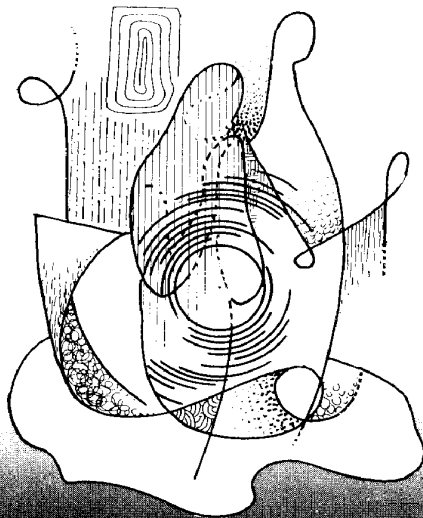
संवाद की खोज

आचार्य पद्मसागरसूरि



संवाद की खोज

आचार्य पक्षसागरसूरि



संवाद की खोज

प्रवचनकार

सुमधुर वक्ता राष्ट्रसंत आचार्य
श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज सा.

प्रेरक

ज्योतिर्विद मुनिरत्न
श्री अरुणोदयसागरजी म.सा.
के शिष्यप्रवर
साहित्यप्रेमी मुनिराज
श्री देवेन्द्रसागरजी महाराज सा.

प्रकाशक

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन
अहमदाबाद

प्राप्ति स्थान

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा,
जिला - गांधीनगर (गुजरात) पीन नं. ३८२००९
फोन नं.: २१३४२, २१३४३
डायल नं.: ०२७१२

प्रथम आवृत्ति : वीर संवत - २५१६
 विक्रम संवत - २०४६
 ई. सं. - १९९०

प्रतियाँ : २०००

विद्या : जैन दर्शन, आत्मोत्थान – छोटे छोटे
 दृष्टान्त ।

मूल्य : पन्द्रह रूपये

मुद्रण : श्री अरविंद पटेल
 व्यवस्थापक : उमिया आर्ट
 शाहीबाग
 अहमदाबाद
 फोन : ६८१५८

प्रकाशकीय वक्तव्य

गृहस्थ-जीवन में करणीय छः प्रमुख दैनिक कृत्यों में आत्मजागृति की दृष्टि से व्याख्यान-श्रवण का अपना एक विशेष महत्त्व है। परन्तु आपाधापी के आज के युग में ऐसे भाग्यशाली सदगृहस्थों की संख्या अधिक नहीं है जिनको कि व्याख्यान या प्रवचन सुनने का नियमित समय और सुअवसर मिल पाता हो। अधिकतर वे जीवन की अपनी भागदौड़ में ही इतने उलझे रहते हैं कि चाहते हुए भी वे, उनका लाभ नहीं उठा पाते। जनसामान्य की इस विवशता को ध्यान में रखकर ही इस संस्था ने संत-मुनिराजों के प्रेरणास्पद एवं पठनीय प्रवचनों को पुस्तकाकार में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है, जिससे कि जिज्ञासु कोई भी पाठक सुविधानुसार उनको पढ़कर लाभ उठा सके।

परमपूज्य आचार्य श्रीमद् पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज एक समर्थ आचार्य ही नहीं; गहन चिन्तक और प्रभावशाली प्रवचनकार भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं के चुने हुए कुछ प्रवचनों का, उनके विद्वान प्रशिष्यरत्न पूज्य मुनिराज श्री देवेन्द्रसागरजी महाराज द्वारा संकलित सार प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, संस्था का यह प्रयास अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होगा और सराहा जायगा।

इस पुस्तक के प्रकाशन में बैंगलोर निवासी उदारमना संघवी और ओटमलजी वेदमूथा ने अमूल्य आर्थिक सहायता प्रदान कर अपने धर्म-प्रेम का जो परिचय दिया है, संस्था उसके लिए उनका हार्दिक आभार मानती है।

— प्रकाशक
अरुणोदय फाउण्डेशन

—: दो शब्द :-

चिंतन के अभाव में चिंताओंका उपस्थित रहना स्वाभाविक है। अनादि कालीन संस्कार और वर्तमान अशुभ निमित्त उसके कारण हैं।

क्लेश पारिवारिक अशांति व अन्य कई असाध्य रोगों का कारण भी ये मानसिक चिंताएँ ही हैं।

चिंता स्वयं में एक रोग है, जिसका उपचार चिंतन के द्वारा ही संभव है। अलग अलग दृष्टिकोणों से संसार के पदार्थों का विचार या चिंतन प्रस्तुत पुस्तकमें दिया गया है।

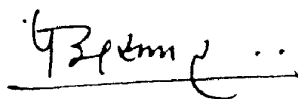
संसार को आध्यात्मिक दृष्टि से देखने की कला जगत के लोगों को देखने को मिले, इसी भावना से इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

विद्वान् मुनि श्री देवेन्द्रसागरजी की प्रेरणा से इन चिंतनों को व्यवस्थित रूप देकर आपके समक्ष रखा जा सका है, तदर्थ वे धन्यवाद के योग्य हैं।

इस पुस्तक के चिंतन-मनन के द्वारा पाठक-वर्ग स्वकल्याण की प्रवृत्तिमें विकास प्राप्त करें, यही मेरी शुभ कामना है।

बैंगलोर

५-१०-८९



प्रेरक की कलम से

परमपूज्य गुरुदेव आचार्य श्रीमद् पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब की सेवा में रहकर तथा उनके प्रवचनों का पान करते हुए मैंने बार-बार यह महसूस किया है कि संसार को देखने-परखने की पूज्य गुरुदेव की अपनी अलग एक आध्यात्मिक है। यहीं तक कि लौकिक पदार्थों एवं विषयों को भी आध्यात्मिकता के आलोक में देखना ही उन्हें अधिक प्रिय है। आध्यात्मिक रुचि और दृष्टिकोण का यह अन्तर उनकी सौम्य-शान्त प्रकृति और संयमशील जीवन की ही एक सहज परिणति है, जिसकी झलक उनके प्रवचनों में भी प्रायः सर्वत्र परिलक्षित होती है। उनकी पारदर्शी दृष्टि उनको सदैव पदार्थ के अन्तर में झांकने तथा उसके वास्तविक स्वरूप को उद्घाटित करने के लिए प्रेरित-सी करती प्रतीत होती है। परिणामतः साधारण-सा विषय भी उनके पारसस्पर्श से कुन्दन बन जाता है।

अपने तलस्पर्शी ज्ञान, दीर्घ अनुभव और चिन्तन-मनन के परिणाम-स्वरूप पूज्य आचार्यश्री न केवल शास्त्रीय एवं दार्शनिक विविध विषयों तथा सिद्धांतों का निरूपण-प्रतिपादन करते हैं; अपितु जीवन के गूढ़ रहस्यों पर भी प्रकाश डालते हैं। इस संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि विषयवस्तु की गंभीरता के बावजूद उनकी भाषा एवं शैली में कहीं कोई दुरूहता या किल्लिष्टता दिखाई नहीं देती। गूढ़ से गूढ़ विषय के प्रतिपादन में भी उन्होंने जिस सरल-सुबोध एवं व्यावहारिक शैली को अपनाया है, वह अपने आप में बेजोड़ है। यही कारण है कि पूज्य आचार्यश्री के प्रवचन सबके आकर्षण के केन्द्र तथा जन-जन के प्रेरणास्रोत बन सके हैं।

प्रस्तुत संकलन में दो वाक्यों के बीच कई बार संबंध का अभाव सा प्रतीत हो सकता है। किंतु गौर करने पर संबंध प्राप्त हो सकेगा। ये वाक्य समुद्र में उठती लहरों के समान हैं। हर लहर यूँ तो अपने आप में भिन्न प्रतीत होती है, परंतु समुद्र को ख्याल में लाते ही उनकी संबद्धता स्पष्ट हो जाती है।

यह संकलन आचार्यश्री के चिंतनसमुद्र की उन अनंत लहरों में से मात्र कुछ का ही है ।

पूज्य आचार्य महाराज द्वारा आशीर्वाद-स्वरूप लिखे गये 'दो शब्द' से इस संकलन की महत्ता द्विगुणित हो गई है । इस अनुग्रह के लिए मैं आचार्यश्री के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ । इसके अतिरिक्त इस संकलन के प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करने तथा मुद्रण एवं प्रुफरीडिंग आदि में सहायता देने वाले महानुभाव मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ।

अन्त में, यदि इस संकलन से किसी को भी लाभ पहुँचा, अंशतः भी किसी की चेतना झंकृत हुई तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा । इति शम् ।

— मुनि देवेन्द्रसागर
महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा (गुजरात)

मोती का प्रकाश

पूज्य आचार्य श्री पद्मसागरसूरीश्वरजी महाराज की बानी में रोचकता, मार्मिकता, चिंतनशीलता एवं अध्ययन परायणता का अहेसास श्रोताओं को प्रतिक्षण होता रहता है। आप में ज्ञान की गहराई, भक्ति की मृदुता एवं अध्यात्म की रहस्यमयता कल कल बहते निर्झर की भांति प्रतिभासित होती हैं। आप में कहीं भी कोई दंश या कटुता का अंश भी देखने को नहीं मिलेगा। जाने आप के मधुर एवं प्रेमसभर व्यक्तित्व का प्रतिबिंब ही यह बानी न हो ! आप का चिन्तन सूत्र बन के आता है, तो आप के द्वारा दिये गये दृष्टान्त आधुनिक मनुष्य के हृदय को स्पर्श कर के रहते हैं। केवल उपदेश ही नहीं, किन्तु व्यवहार में वह कहाँ प्रकट होता है उस का दिशा सूचन भी आप करते हैं। धर्म-सिद्धान्त या तत्त्वज्ञान की कठिन विवेचना भी आपकी बानी में सामान्य मनुष्य को समझ में आ जाय ऐसी सरल बन जाती है। इस ग्रंथ में 'एक्स-रे', शरीर, खेती, चम्मच जैसे चिर-परिचित विषयों का आलंबन ले के आप अध्यात्म-रहस्य का कोई न कोई मर्म प्रकट कर देते हैं। आप के दृष्टान्त बहुजन समाज को आसानी से समझाने वाले और बात के मर्म को श्रोता के दिमाग में ठीक से बैठा देने वाले होते हैं।

विचारों का सरल सौन्दर्य, भावना की साहजिक दीप्ति, और अभिव्यक्ति की निर्व्याज मधुरता का यहाँ निरन्तर अनुभव होता है। इस का कारण यह है कि उस बानी के पीछे चिंतन की गहराई, अनुभूति की सच्चाई

एवं साधना की सौरभसभर महक रहती हैं। पंडित मरण, समकित-दृष्टि, पुद्गल, स्वाध्याय, और श्रुतज्ञान जैसे विषय कितनी स्वाभाविकता से दर्शाये गये हैं ! जीव और शिव, आत्मा और परमात्मा, मनुष्य एवं प्रभु महावीर के बीच संवाद की खोज करने का मार्ग इस पुस्तक में आलिखित है। संक्षिप्त फिर भी प्रभावक ढंग से लिखे गये प्रत्येक प्रकरण में अध्यात्म के महासागर में गोता लगा के दूँढे हुए मोती बिखरे पड़े हैं। भौतिकवाद से पीडित युग में प्रत्येक साधक के लिए यह मोती जीवन-पथ-प्रदर्शक बनेगा।

— कुमारपाल देसाई

प्रस्तुत प्रकाशन के सहयोगी



पिताश्री
संघवी ओटमलजी जेटाजी
रेवतडा (राजस्थान)

मातुश्री
पावृबाई ओटमलजी
रेवतडा (राजस्थान)



**MYSORE HOSIERY CENTRE
13/1 MAMUL PET
BANGALORE-53**

प्रस्तुत प्रकाशन के सहयोगी : एक परिचय

प्रसन्नता का विषय है कि प्रस्तुत प्रकाशन की सफलता में संघवी श्रीओटमलजी वेदमूथा का सराहनीय सहयोग रहा है। आपके द्वारा उदार हृदय से मिले आर्थिक सहयोग के फलस्वरूप ही यह चिन्तन एक पुस्तक का आकार ग्रहण कर आपके कर-कमलों तक पहुँच पाया है।

व्यवसायार्थ वर्षों से बैंगलोर में रहनेवाले संघवीश्रीओटमलजी जेठमलजी वेदमूथा मूलतः राजस्थान के जालोर जिले में स्थित रेवतडा के निवासी हैं। धार्मिक परिवार में सुसंस्कारों से पोषित होने के कारण प्रारम्भ से ही आप व आपकी धर्मपत्नी उदार हृदयी व धर्मशील रहे हैं। आपके सुपुत्र सर्वश्री मदनलाल, वसन्तकुमार, गणपतकुमार, चम्पालाल, दिनेशकुमार, मुकेशकुमार, सुरेशकुमार, जोगेश व गुलाब ने भी इस सुन्दर व शालीन परम्परा का पूर्णरूप से निर्वाह किया है। व्यवसाय में व्यस्त होते हुए भी आपका समग्र परिवार बैंगलोर में विविध धर्म-आराधनाओं व पुण्यकार्यों में सदा भावोल्लासपूर्वक भाग लेता रहा है। आज से कोई तेरह वर्ष पूर्व आपके परिवार ने राजस्थान के जैसलमेर, राणकपुर, वरकाणा, ओसिया, फलौदी,

नाकोड़ा, भाण्डवपुर इत्यादि तीर्थों वाले बारह बसों के एक यात्रीसंघ का भी आयोजन करके उल्लेखनीय पुण्यकार्य किया था ।

इस पुस्तक के प्रकाशन के निमित्त दिये गये सहयोग के लिए आप सचमुच अनेकशः धन्यवाद के पात्र हैं । संस्था आपका हृदय से आभार व्यक्त करती है ।

— प्रकाशक



दिव्याशीषदाता
गच्छाधिपति आचार्यदेव श्री कैलाससागरसूरीश्वरजी म.सा.



सुमधुरवक्ता
आचार्यदेव श्री पंचसागरसूरीश्वरजी म.सा.

१. आत्मसंशोधन

आत्मसंशोधन से आत्मा का विकास होता है । स्वयं बुरे, होते हुए भी अपने आपको अच्छे माननेवाले लोग तो इस जगत् में अनेक हैं, परंतु ऐसे महापुरुष विरले ही हैं जो स्वयं अच्छे होते हुए भी अपने आपको बुरा या अयोग्य समझें ।

जीवन में आत्मसंशोधन आवश्यक है । मनुष्य होते हुए भी हमारी वृत्तियाँ श्वान जैसी हैं । श्वान को जो रोटी देता है, उसके तो वह पैर चाटता है परन्तु जो न दे सके, उसके सामने भौंकता है । इसलिए दूसरों के दुर्गुण देखने के बजाय उनके सद्गुण ही देखना चाहिए । साथ ही हमें चाहिए कि हम सर्व-प्रथम हमारे चंचल स्वभाव को स्थिर करके तथा अपने दुर्गुणों को खोजकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें ।

मनुष्य को घड़ी के काँटे की भाँति स्थिरता से, धीरे-धीरे काम करना चाहिए । परन्तु जो करने का काम है, उसे हम भूल जाते हैं, अतः नहीं करने योग्य गलत विचार मन के सामने आकर खड़े हो जाते हैं । इसलिए सर्वप्रथम मन को तालीम देने की, उसे स्थिर करने की आवश्यकता है ।

बुढ़ापे में होनेवाला आत्मसंशोधन पके

आम के समान मधुर होता है । बुढ़ापे में अत्यंत भाव से, भक्ति से, प्रसन्नता से, उल्लास से, आनंद से प्रभु का दर्शन, पूजन, स्मरण, कीर्तन करना है । जवानी में यदि सुन्दर पठन, सुन्दर अध्ययन, और सुन्दर श्रवण प्राप्त हुआ हो तो बुढ़ापे में उच्च प्रकार का जीवन जीया जा सकता है । वीणा को यदि बेसुरे ढंग से बजाया जाय तो वह सुनना हमें पसंद नहीं आता । परंतु यदि उसे संवादिता से बजायें, तो उसमें से सबको प्रसन्न करनेवाले मधुर सूर निकलते हैं ।

मन को संवादित करने से हमारा दिमाग बुढ़ापे में भी नियमित रूप से काम कर सकता है ।

जीवन में हमें संवाद, शांति और स्थिरता को स्थान देकर 'सर्व' के साथ 'स्व'-आत्मा- की सेवा करके उसका उद्धार करना है ।

दुःखी में दुःखी क्रोधी व्यक्ति है और सुखी में सुखी प्रेमी ही है । अतः क्रोधी के प्रति करुणा दर्शानी चाहिए ।

२. मानव

देवगण भी मानवजन्म प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं, क्योंकि मानव में मानवता की सुरभि भरी हुई होती है। परंतु मानवजीवन आज अनेक यातनाओं से भर गया है। आज मनुष्य-मनुष्य के बीच बैर की, विरोध की, कषायों की दीवारें खड़ी हो गई हैं। मनुष्य मनुष्य का सामूहिक कत्ल तक करता है। आत्मा का मूल्य भुला दिया गया है। मानवता मर चुकी है। मनुष्य पशु से भी अधिक अधम व दुष्ट बन गया है।

मानवता मानव को महामानव बनाती है, सब का मित्र बनाती है। तीर्थंकर भगवंत बनने के लिए, केवलज्ञान पाने के लिए सच्चे इंसान बनने की अत्यंत ही आवश्यकता है।

श्रेष्ठ वैभव का सुखोपभोग करनेवाले अनुत्तर विमानवासी देव भी मनुष्य भव की इच्छा करते हैं। यहाँ त्याग है, संयम है, इसीलिए धरती ही स्वर्ग है। मनुष्य के विकास का क्षेत्र यह धरती ही है। परन्तु यहाँ के मनुष्य आँखें मूँद कर प्रभु से स्वर्ग की याचना करते हैं।

पृथ्वी पर ही मानवता प्रगट होती है। यहीं मानव आत्मज्ञान प्राप्त करता है। इसलिए यहीं आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाना है।

३. विद्या

वर्तमान में विद्या का उपयोग व्यापार के लिए, अर्थप्राप्ति के लिए होता है, जबकि विद्या द्वारा हमें जीवन का दर्शन करना है। आज जीवन का मूल्य धन एवं भौतिक साधनों की प्राप्ति मात्र रह गया है। सारा समाज उसी प्रतिमान से एक दूसरे को नाप रहा है। सज्जनों का मूल्य हमारे पास नहीं है। हृदय के धनी और सद्गुणों से युक्त ऐसे आत्माओं की आज कमी है। आज हम भौतिकतावादी दर्शन के कारण दिन-प्रतिदिन दीन और अभिमानी बनते जा रहे हैं।

मन की तालीम द्वारा ही विद्या का सदुपयोग हो सकता है। विद्या आज विवाद और धन-प्राप्ति हेतु उपयोग में लायी जाती है, जबकि साधु-महात्माओं की विद्या का उपयोग जनकल्याण के लिए होता है; क्योंकि वहाँ सही दृष्टि और विवेक है।

प्रेम से लहू का दूध बन जाता है और नफरत से, धिक्कार से लहू का पानी बन जाता है।

४. अहम्

‘ज्ञानसार’ में उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज बताते हैं कि इस संसार में दो परस्पर विरोधी तत्व कार्य कर रहे हैं : प्रकाश और अंधकार, सत्य और असत्य, मृत्यु और अमरता उसी तरह राग और द्वेष ।

जब जीवन में राग-द्वेष शांत हो जाते हैं, तब मोक्ष प्राप्त होता है । राग-द्वेष के संघर्ष का नाम ही तो संसार है । जो आत्माएँ इस संघर्ष से मुक्त हो जाती हैं, वे मोक्ष पाती हैं । राग-द्वेष से मानसिक क्लेश होता है, सुख की या समाधान की वृत्ति दूर होती है । राग और द्वेष के कारण आत्मा का उद्धार नहीं होता । वे आत्मा को निर्मलता, उदारता पवित्रता आदि ‘स्व’ भावों की ओर जाने नहीं देते । इससे कर्मबंधन अधिक होता है । मोहराजा के ‘मैं’ और ‘मेरा’ -इन दो मंत्रों ने ऐसा जादू किया है कि हम मुग्ध, मूढ़ बन जाते हैं । गुजराती में “हुं” (मैं) के जैसा वक्र अक्षर और कोई नहीं है । जब आत्मा में अहम् का प्रवेश हो जाता है, तब वह भी वक्र बन जाती है । बाहुबली और भरत के बीच युद्ध का कारण ‘अहम्’ ही था । अहम् की वजह से ही तो हम संसार में भटक रहे हैं ।

मनुष्य के दुःख का मूलभूत कारण उसका अहम् ही है ।

वर्षाऋतु में नदी में बाढ़ आने पर अकड़ कर खड़े रहनेवाले पेड़ बह जाते हैं, किन्तु बेत के पेड़ झुक जाते हैं, इसी से वे पानी में बह नहीं जाते । उनमें झुक जाने की जो वृत्ति है, जो विशेषता है, उसी के कारण अपने सर्वनाश को आमंत्रण नहीं देते हुए वे बाढ़ के उतर जाने पर पुनः खड़े हो जाते हैं ।

मोहराजा का साम्राज्य 'अहम्' और 'मम' के ऊपर ही टिका हुआ है ।

अहम् के कारण न 'सुनना' अच्छा लगता है, न 'बोलना' अच्छा लगता है ।

* * *

- क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो ? क्यों व्यर्थ डरते हो ? कौन तुम्हें मार सकता है ? आत्मा न पैदा होती है न मरती है ।
- जो हुआ वह अच्छा हुआ, जो हो रहा है, वह अच्छा हो रहा है । जो होगा, वह भी अच्छा ही होगा । भूतकाल का पश्चात्ताप न करो, भविष्य की चिन्ता न करो । वर्तमान चल रहा है ।

* * *

५. मम और ममता

‘मेरी वस्तु, मेरे विचार ही सर्वश्रेष्ठ हैं’

ऐसा हम समझते हैं। इसीसे द्वेष का दावानल सुलग उठता है और मनुष्य जगत् का मित्र नहीं बन सकता। स्नात्र पूजा में रोज बोला जाता है : ‘सवि जीव करूँ शासनरसी’

आज जब घर में ही शांति नहीं है तो हम जगत् को कैसे शांति दे सकेंगे ? जगत् में जब अहिंसा के विचारों का प्रसार होगा, तब ही जगत् में शांति की स्थापना होगी। अगर हमारे एक ही दांत में दर्द होता है तो भी हम आकुलव्याकुल हो जाते हैं परन्तु चीन या जापान में भूकंप से लाखों इंसान मर जाते हैं तो हमें खास दुःख नहीं होता। लेकिन ध्यान रहे : तू खुद ही तू नहीं है, तू यात्री है और कल कौल या बुलावा आने पर चल देना पड़ेगा। सभी इस जगत् के यात्री हैं। इसलिए किसीके साथ बैर नहीं रखना है, बल्कि सभी के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना है।

मानवजाति को नवपल्लवित करने, के लिए ‘मम और ममता’ को छोड़कर स्वाध्याय, चिंतन, वर्तन के द्वारा जीवन में सत्य-दर्शन करना और कराना है।

६. श्रम और साधना

प्रतिदिन दो आने कमानेवाले पुणिया श्रावक की विचारधारा में एक दिन अंतर आया । कारण ढूँढने पर उसको पता चला कि बिना माँगकर लाये हुए एक उपले पर आज उसके भोजन का थोड़ा भाग बनाया गया है । इस चोरी की वजह से उसके हृदय में प्रभु का नाम रोज की तरह नहीं आया । इसलिए उसने उस दिन उपवास किया और भोजन नहीं लिया ।

आज हम जब प्रभु का स्मरण करते हैं, तब न करने जैसे विचार मन में आ जाते हैं और मन अन्य बातों में भटक जाता है । इस वजह से चित्त की प्रसन्नता नहीं रहती । इसका एक कारण हमारा अन्न भी है । जैसा अन्न वैसे विचार । आहार के साथ विचार और आचार संबंधित हैं । इसी वजह से हमारे जीवन से श्रम और साधना चले गये हैं । इन दोनों के बिना शुद्धि की संभावना ही कहाँ ?

* * *

* न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इस शरीर के हो । यह शरीर अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश से बना है, और इसी में मिल जायेगा, परन्तु आत्मा स्थिर है, फिर तुम क्यों रोते हो ?

* * *

७. परिग्रह

आवश्यकता से अधिक वस्तु को संचित करना 'परिग्रह' है। परिग्रह अनेक प्रकार के पापों एवं बुराइयों को जन्म देता है। वह तृष्णा का भी जनक है। उसके कारण घर में क्लेश घुल जाता है और जीवन अशान्त बन जाता है। अति परिग्रही व्यक्ति का मान-सम्मान भी घर में गिर जाता है।

यदि बहुत अधिक परिग्रह कर लिया जाय तो मृत्यु भी उसका बोझ उठाने में कतराती है और आदमी चैन से मर भी नहीं पाता। इसीलिए परिग्रह को सब से अधिक भारी बोझ कहा गया है।

परिग्रह बड़े हुए नाखून की तरह है। जिस प्रकार बड़े हुए नाखून में मैल भर जाता है और अधिक बड़ा हो जाने पर उसके मुड़ने-उखड़ने एवं स्वयं को अथवा किसी दूसरे को लग जाने आदि का भय बना रहता है, उसी प्रकार बड़े हुए परिग्रह से भी जीवन में कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यह शरीर में रहे हुए मल की भाँति हमारे स्वास्थ्य को ही चौपट नहीं करता, बल्कि भव को भी बिगाड़ देता है।

इसके विपरीत 'अपरिग्रह' से तृष्णा कम होती है, जिससे मन को शान्ति मिलती है।

जैसे ग्रहों की शान्ति दान करने से होती है, वैसे ही परिग्रह से मुक्ति पाने का उपाय भी अतिरिक्त का दान या त्याग करना ही है। इसलिए अपनी आवश्यकता के अनुसार ही परिग्रह करने का नियम ले लेना चाहिए और आवश्यकता से अधिक का नियमपूर्वक त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि आवश्यकताओं की पूर्ति जितना तो जीवन में मिलता ही है।

जिस प्रकार समुद्र में यात्रा करते समय नाव में कम से कम भार रखा जाता है, अन्यथा नाव के डूब जाने का खतरा बना रहता है, इसी प्रकार भव-समुद्र को पार करने के लिए भी इस जीवन-नौका को अति परिग्रह के बोझ से बचाना चाहिए, नहीं तो जन्म-जन्मान्तर तक इस संसार-समुद्र में ही भटकते रहना पड़ेगा।

साधु का काम सहन करने का है। श्रावक का काम देव, गुरु और धर्म की रक्षा करना है। श्रावक तो साधु का किला है। जगत को अभय देनेवाले, साधुओं की रक्षा करनेवाले श्रावक एक प्रकार से उनको 'अभयदान' देते हैं।

८. स्त्री और संयम

स्त्री के जीवन में संयम की अत्यन्त आवश्यकता है। उसे संयम रूपी किनारों को जीवन के आसपास रखना ही चाहिए। एक बार सरिता ने किनारों से कहा : “तुम टूट जाओ, क्योंकि हमारे स्वच्छंद विहार में बाधा होती है।”

तब किनारोंने कहा, “अगर हम टूट जायेंगे, तो तुम को रेगिस्तान बन जाना पड़ेगा। तुम महासागर को भी प्राप्त नहीं कर सकोगी।” इसी तरह हमारे जीवन रूपी सरिता के आसपास भी यदि संयम रूपी किनारे नहीं होंगे तो हमारा जीवन भी इधर-उधर भटक कर बरबाद हो जायेगा।

दीपावली के दिनों में कृष्णपक्ष की तेरस को लक्ष्मीपूजन होता है। चौदस के दिन माँ-काली की उपासना की जाती है और अमावस्या के दिन शारदा अर्थात् सरस्वती की पूजा होती है। क्यों ? इसलिए कि स्त्री में धन देने की, बल देने की एवं विद्या देने की क्षमता है।

गिरते हुए पति को बचावे और कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर ले जाय, वही सच्ची पत्नी है।

मदनरेखा का जेठ उसके पति का खून कर देता है। उस समय मदनरेखा मरणासन्न

पति को समताभाव रखने और उसे क्षमा कर देने का उपदेश देती है, क्रोध के लाल रंग को धोकर श्वेत बनाती है । इससे उसका पति शांत हो जाता है और मर कर देव बनता है ।

प्रभात होने पर मदनरेखा गुरु का व्याख्यान सुनने जाती है । उसका देव पति भी अपने आंतरिक ज्ञान से वहाँ आ जाता है । व्याख्यान में वह प्रथम गुरु को नहीं, अपितु मदनरेखा को वंदन करता है, क्योंकि वही उसका उद्धार करने वाली थी ।

* * *

* परिवर्तन संसार का नियम है । जिसे तुम मृत्यु समझते हो, वही तो जीवन है । एक क्षण में करोड़ों के स्वामी बन जाते हो, दूसरे ही क्षण में तुम दरिद्र हो जाते हो । मेरा-तेरा, छोटा-बड़ा, अपना-पराया मन से मिटा दो, विचार से हटा दो फिर सब तुम्हारा है, तुम सबके हो ।

* * *

९. मूल्यवान वस्तु

वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसको जाँचने का, नापने का साधन उतना ही सूक्ष्म होता है। लकड़ी से ज्यादा अनाज मूल्यवान होता है, इसलिए उसे तोलने का साधन तराजू छोटा होता है। सुवर्ण की अपेक्षा हीरे और रत्न अधिक मूल्यवान होते हैं, अतः उनको तोलने का साधन और भी सूक्ष्म होता है।

जगत् में सबसे मूल्यवान वस्तु धर्म ही है। इसलिए उसको सूक्ष्म बुद्धि से ही समझा जा सकेगा। तुला बराबर न हो तो तोल बराबर जाना नहीं जा सकता।

हमारी बुद्धि सूक्ष्म और स्थिर होनी चाहिए। हमारे चैतन्य के अंदर जो तत्त्व पड़े हैं, उन्हें परखने के लिए सूक्ष्म बुद्धि होनी चाहिए। इस दृष्टि से अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओं को जीवन का ध्येय बनाना चाहिए। प्रभु में सूक्ष्मता और स्थिरता दोनों ही हैं। धर्म तारनेवाला है वह जीवन में एक साथी के समान है। इसलिए वह सर्वाधिक मूल्यवान् वस्तु है।

१०. धर्म और विज्ञान

भौतिक पदार्थों को प्राप्त करने के लिए हम जितना परिश्रम करते हैं, उतना श्रम, उतनी बुद्धि का उपयोग अगर हम आत्मा के लिए करें तो निःसन्देह आत्मा का कल्याण हो जाय । धर्म के विषय में चारित्र्य, बुद्धि और स्थिरता - ये सब चाहिए । पात्र भी उत्तम होना चाहिए ।

धर्म के लिए ज्ञान चाहिए । धर्म को विज्ञानयुक्त दृष्टि से पहचानना होगा ।

पानी के तले अगर हीरा पड़ा हो और पानी स्थिर न हो तो हीरा दिखाई नहीं पड़ता उसी प्रकार आत्मा में यद्यपि अनंत सामर्थ्य भरा पड़ा है, फिर भी हमारी चंचलता की वजह से हम आत्मा का उद्धार कर नहीं पाते ।

वस्त्र जितना अच्छा होता है, उसका मूल्य उतना ही अधिक होता है । इसी प्रकार लोहे के एक टुकड़े की कीमत एक रुपया होती है, लेकिन उसमें से ऑपरेशन आदि के लिए जब यंत्र या साधन सूक्ष्म बना लिया जाता है, तो उसकी कीमत अनेकगुना बढ़ जाती है । उसी प्रकार इस जीवन को भी हमें तप-त्याग द्वारा सूक्ष्म एवं उपयोगी बनाकर आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनाना है ।

११. आज

भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से बार बार कहा है कि, —“हे गौतम ! एक क्षण का भी प्रमाद मत कर ।” क्योंकि बीता हुआ समय कभी वापस नहीं आता । इसलिए उसका सदुपयोग करना चाहिए । समय चंचल है, वह कभी पकड़ा नहीं जा सकता । और अगर पकड़ा भी जाय तो रोका नहीं जा सकता । तीर्थंकर भगवान भी समय को रोक नहीं सके हैं । समय को रोका नहीं जा सकता, लेकिन उसे खरीदा जा सकता है । उसे खरीदा जा सकता है, सद्गुणों के द्वारा । जिसके पास समझ है, विवेक-बुद्धि है, वही समय का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है । जो समय चला जाता है, वह जाने के बाद वापस नहीं आता, इसलिए आनेवाले 'कल' का काम आज ही कर लेना चाहिए । बीती हुई 'कल' की बात को भूल कर 'आज' को सुन्दर बनाना चाहिए । इस हेतु प्रतिदिन आराधना करनी चाहिए । जीवन को 'कल' के भरोसे नहीं, 'आज' जीना है ।

समय तो जल के प्रवाह की भाँति जा रहा है । उसे स्वाध्याय, तप, ब्रह्मचर्य, उपकार और दान के द्वारा सार्थक शोभायमान करना है, सद्गुणों में यथासंभव वृद्धि करनी है ।

१२. दिव्य पाथेय

यात्रा में खाने की चीजों की-पाथेय की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार लंबी यात्रा के लिए निकली हुई इस आत्मा को भी पाथेय की आवश्यकता होती है। प्रतिदिन सुबह हम जागेंगे ही, ऐसा कुछ निश्चित नहीं है। एक न एक दिन तो आँखें बंद हो ही जानेवाली हैं।

संसार के मोह के चक्कर में हम तत्त्वज्ञान की बातों को भूल जाते हैं। 'आज' तो अच्छी तरह से बीतनेवाली है, लेकिन हमें तो 'कल' के लिए सोचना है। आत्मा तो सदा 'प्रवासी' ही है। वह कहीं भी 'वासी' अर्थात् स्थिर होकर रहनेवाली नहीं है, अतः उसको तो पाथेय की बहुत आवश्यकता रहती है।

एकांत में बैठकर आत्मा को पूछना है कि "तुझे जाना है ?" अगर 'हाँ' तो जाने की तैयारी कर।"

यहीं छोड़कर जाने की वस्तुओं को इकट्ठा करने के पीछे जीवन को बरबाद नहीं करना है। जाते समय जो साथ न आयें उन वस्तुओं को इकट्ठा करने की जरूरत ही क्या ? जगत में कंचन, कुटुंब, काया और काम ये चार वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं, किंतु इन चारों में से एक भी वस्तु साथ आनेवाली नहीं है। दान,

शील, तप और भाव— ये ही साथ आनेवाले हैं ।
जीवन में अगर ये 'चार' नहीं होंगे तो पहले के 'चार'
तो साथ आनेवाले ही हैं ।

इन्सान जब गँव जाता है तब साथ में खाद्य
सामग्री ले कर जाता है । वह बुद्धू नहीं है । अपनी
सुविधा के विषय में वह अत्यंत बाहोश है ।

जीवन की लंबी—लंबी यात्राओं का अंत
नहीं है । ऐसी अंतहीन यात्रा पर निकलनेवाले
मनुष्य के पास खाने के लिए क्या है ?
प्रवास में अगर साथ में साधन न ले तो
ज्ञानी उसे गँवार कहते हैं । हरेक मनुष्य स्वयं
को बुद्धिमान समझता है, किंतु हमारी
बुद्धिमत्ता कितनी ? बुद्धिमत्ता, सयानापन, तो
वही है कि जिसका विराम शांतिमय हो ।

इस संसार की लंबी यात्रा पर जाने के
लिए तुम्हें जन्म—जन्मांतर का पाथेय साथ में
लेना चाहिए । भौतिक साधन तो तुम्हारे चले
जाने के बाद दूसरों के हाथ में ही जानेवाले हैं ।

इस भव—पाथेय के चार अंग हैं :

१. ज्ञानी के मुख से शास्त्रों के सुवचनों का
श्रवण ।
२. विचारपूर्ण मनन—चिंतन ।
३. निदिध्यासन—इंद्रियों के ऊपर संयम एवं
आत्मजागृति ।
४. सोचसमझ— पूर्वक आचरण ।

१३. भयंकर ग्रह

'परिग्रह' का ग्रह जिस साधक को लग जाता है, उस साधक का जीवन परिग्रह को सम्हालने में ही पूर्ण हो जाता है। परिग्रह रद्दी के समान ही है, जिसकी कोई कीमत नहीं। परिग्रह सुवर्ण की कटार है, छाती में लगते ही रक्त की धारा बह निकलती है और कभी मौत का कारण बनती है। परिग्रह बहुत अधिक हो तो किसी के ऊपर विश्वास भी नहीं रहता। परिग्रह को सम्हाल कर रखने में और उसका जतन करने में ही समय व्यतीत हो जाता है।

जिस प्रकार यात्रा में सामान जितना कम हो उतनी ही दिक्कत भी कम, उसी प्रकार अगर परिग्रह का बोझ कम हो तो जीवन भी निश्चित, निरापद, हल्का और सुविधापूर्ण हो जाता है। परिग्रह के बोझ से धर्माधना हो नहीं सकती। वह आत्मविकास में भी बड़ा अंतराय करता है।

* * *

* तू जो कुछ भी करता है, उसे भगवान को अर्पण करता चल। ऐसा करने से तू सदा मुक्त जीवन का आनंद अनुभव करेगा।

* * *

१४. नवपद-अरिहंत, सिद्ध

नवपदजी के चक्र के साथ मन को बाँधना चाहिए, जिससे वह इधर-उधर भटकना छोड़ दे । चक्रवर्ती छः खंडोंपर विजय प्राप्त करता है, जबकि सिद्धचक्र चौदह राजलोक पर विजयी बनता है ।

अरिहंत अठारह दोषों से रहित, आंतरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाले, तीनों जगत को देखनेवाले हैं ।

अरिहंत आकारवाले हैं, साकार हैं । सिद्ध निराकार हैं । सिद्धों का परिचय करानेवाले अरिहंत हैं । ग्रेविटेशन या गुरुत्वाकर्षण नया नहीं है । लेकिन उसका परिचय करानेवाले न्यूटन हैं, उसी प्रकार सिद्ध नये नहीं हैं, किंतु उनका परिचय करानेवाले अरिहंत हैं ।

अरिहंत भगवंत ताले की चाबी के समान हैं । ताले को खोलकर वे हमें धर्मरूपी खजाना देते हैं, इसलिए अरिहंतों का नाम प्रथम लिया जाता है ।

अरिहंत हमको अपनी आत्मा का ज्ञान कराते हैं । ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य के दिलानेवाले अरिहंत हैं । सिद्ध अवस्था की प्राप्ति करानेवाले भी अरिहंत हैं ।

प्रत्यक्ष, उपमा और शास्त्रों के द्वारा,

अरिहंतों का ज्ञान होता है ।

हम सिद्धों को देख नहीं सकते, किंतु उनके स्वरूप को समझ सकते हैं । कर्मों से सर्वथा मुक्त होने पर सिद्ध बनते हैं । सिद्धों ने कर्मों का समूल छेदन कर डाला है । स्वभाव का आनंद प्राप्त करनेवाले सिद्ध हैं ।

* * *

* तुम्हारा क्या गया, जो तुम रोते हो ? तुम क्या लाये थे, जो तुमने खो दिया ? तुमने क्या पैदा किया था, जो नाश हो गया ? न तुम कुछ लेकर आये थे । जो लिया यहीं से लिया ; जो दिया, यहीं पर दिया, जो लिया इसी (भगवान) से लिया जो दिया, इसी को दिया, खाली हाथ आये, खाली हाथ ही चले । जो आज तुम्हारा है, कल किसी और का था, परसों किसी और का होगा, तुम इसे अपना समझ के मग्न हो रहे हो । बस यही समझ तुम्हारे दुःखों का कारण है ।

* * *

१५. ज्ञान और ज्ञानी

‘उत्तराध्ययन सूत्र’ में प्रभु कहते हैं कि बालजीव, छोटी वस्तु की प्राप्ति के लिए बड़ी वस्तु की उपेक्षा करते हैं। लेकिन समझदार मनुष्य मूल्यवान वस्तु को प्राप्त करने के लिए छोटी वस्तु को छोड़ देते हैं।

इंद्रियों की तृप्ति और भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए ही बालजीव जीते हैं, जबकि पंडित जीवन भर आत्मा का ही विचार करते रहते हैं।

हमारे अंतर्द्वार अभी बंद हैं, अंतर में अंधकार है। जैसे अंधेरे कमरे में हम सहसा प्रवेश नहीं करते, बल्कि प्रकाश होने के बाद ही उसमें जाते हैं, वैसे ही क्रोध, मान, माया और लोभ का अँधेरा अंतर में फैला हुआ है, लेकिन भीतर में ज्ञानरूपी प्रकाश फैलते ही हम अंतर की यात्रा प्रारंभ करते हैं।

ज्ञानी और शास्त्र अंतर का तिमिर दूर कर प्रकाश फैलाते हैं।

ज्ञान अमूल्य है, ज्ञान प्रकाश है, ज्ञान शिखर की चोटी है। महावीर प्रभु ज्ञान के सागर थे। अन्य ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान के बिंदु समान थे। प्रभु तत्त्वज्ञानी थे। वे तारकगण में चंद्र के समान थे। तत्त्वज्ञानी अपनी बुद्धि का उपयोग मंदबुद्धि लोगों को धर्म देने के

लिए करते हैं ।

ज्ञान से विनय आता है, नम्रता आती है । शरीर में वृद्धावस्था आती है, लेकिन ज्ञान को कभी वृद्धावस्था नहीं आती । ज्ञानी की बात जितनी भी बार सुनते हैं, उतनी ही बार हमारा मन स्वच्छ होता है । इसलिए समय मिलने पर ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए । जिस प्रकार मधुमक्खी अलग-अलग फूलों का रस ग्रहण कर छत्ता बनाती है, उसी प्रकार हमें भी अपने जीवन का भंडार ज्ञान से समृद्ध करना चाहिए ।

ज्ञान की प्राप्ति के लिए अशुभ क्रियाओं का त्याग और शुभ क्रिया में रुचि रखना आवश्यक है । मुनियों की अशुभ से निवृत्ति और शुभ में प्रवृत्ति होती है ।

* * *

- * तुम अपने आप को भगवान को अर्पित करो, वही सब से उत्तम सहारा है । जो इसके सहारे को जानता है, वह भय, चिन्ता, शोक से सर्वदा मुक्त है ।

* * *

१६. प्रकाश पंथ

प्राकृतिक प्रसंग जीवन को प्रेरणा देते हैं। सुंदर फूल खिलते हैं, खुशबू देते हैं और शाम को मुरझा जाते हैं। यह देखकर मन में दुःख होता है और यह विचार आता है कि जिस प्रकार ये जन्म लेते हैं, खिलते हैं और संध्या होते ही नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह जीवन का भी होता है।

“राजीमती को छोड़कर नेमकुमार संयम ग्रहण करते हैं।” चित्र में ऐसा दृश्य देखकर पार्श्वकुमार के मन में संयम भावना जागृत होती है। इस प्रकार कई चित्र भी आत्मा की उन्नति करने में सहायक होते हैं।

भगवान की भव्य मूर्ति भी हमें प्रेरणा दे जाती है। श्रवण बेलगोला में बाहुबलि की प्रतिमा देखकर विराटता के दर्शन होते हैं। पालिताणा में श्री आदीश्वर की प्रतिमा को देखकर हमारे भाव ही परिवर्तित हो जाते हैं। महेसाणा में श्री सीमंधर स्वामी की मूर्ति को देखकर भव्यता के दर्शन होते हैं।

प्राकृतिक प्रसंग, चित्र, मूर्तियाँ, शास्त्र और ज्ञानियों की वाणी ये सब जीवन को परिवर्तित कर देते हैं, हृदय के द्वार खोल देते हैं, जिससे अंतर में प्रकाश फैल जाता है और आत्मा प्रकाश के पंथ पर विहार करने लगती है।

१७. तपश्चर्या व स्वास्थ्य

जिस प्रकार आग कचरे को जलाकर राख कर देती है, उसी प्रकार तपश्चर्या भी पेट के कचरे को जला कर भस्म कर देती है । इसीलिए उपवास आदि की तपस्या करने वाले दीर्घजीवी होते हैं । तपस्या से शरीर के विकार तथा रोग दूर होते हैं । शरीर यदि रोग रहित हो तो मन भी निर्मल बनता है, जिसके फलस्वरूप आत्मा शुद्ध होती है । इस प्रकार धर्माराधन के लिए पहले शरीर का स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है । अगर शरीर बीमार हो तो मन व्यग्र रहता है । तपस्या शरीर के 'ओइलिंग' का काम करती है, उससे पाचन तन्त्र को आराम मिलता है । शरीर, मन और आत्मा अगर निर्मल हों तो धर्म की भावना भी शुद्ध होती है । इसीलिए यथाशक्ति तप अवश्य करना चाहिए । शक्ति होने पर भी जो तपस्या नहीं करता, वह भी दोष का भागी होता है ।

तपश्चर्या से शरीर के कई रोग नष्ट हो जाते हैं । जैसे चर्मरोग और सूजन में आयंबिल बहुत लाभदायक होता है ।

परन्तु तपश्चर्या भी विधिपूर्वक करने पर ही फलदायी होती है । इसके अतिरिक्त तपस्या करने में बहुत सावधानी रखने की

आवश्यकता है

तपस्या अपनी शक्ति के अनुसार ही करनी चाहिए । साथ ही उपवास आदि की तपस्या के बाद पारणा करते समय भी बहुत सावधानी रखनी चाहिए और खुराक बहुत धीरे-धीरे लेना चाहिए ।

तप सूर्य के समान है ; अतः तपस्या करने वाले को अपना दिल-दिमाग बहुत ठंडा रखना चाहिए । तपस्या के समय क्रोध करना उचित नहीं । जैसे लोहे के छड़ का छोर गरम होकर लाल हो जाय तो अच्छा है, पर उसकी गरमी का हाथ तक पहुँच जाना तथा उसको जला देना अच्छा नहीं ।

* * *

- वाणी तो संयत भली, संयत भला शरीर
पर जो चित्त संयत करे, वही संयमी वीर ॥
- रण सहस्र योद्धा लड़े, जीते युद्ध हजार ।
पर जो जीते स्वयं को, वही शूर सरदार ॥
- मन के धर्म सुधार ले, मन ही प्रमुख प्रधान ।
कायिक वाचिक कर्म तो, मन की ही संतान ॥

* * *

१८. सम्यक्त्व

जब 'सम्यक्त्व' आता है, तब विकास का बीज बोया जाता है। मोक्षप्राप्ति के साधन सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र हैं। सम्यक् दर्शन से मोक्ष का अंकुर प्रगट होता है।

जिस प्रकार स्वस्थ मनुष्य को भूख लगती है, उसी प्रकार जिसका मन तुंदुरस्त होता है, उसे सम्यक् दर्शन प्रकट होता है। मन के रोगी सम्यक् दर्शन को कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। भव्य आत्मा सम्यक् दर्शन की अधिकारिणी बन सकती है। जिनकी भवितव्यता परिपक्व हो गई हो, वे शीघ्र सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। उच्च धर्मी को या परमात्मा की मूर्ति को देखकर भी सम्यक्त्व प्रकट होता है। एक में चेतन काम करता है, दूसरे में जड़।

आगम, उपदेश, मूर्ति, सुवाक्य इत्यादि सम्यक्त्व-प्राप्ति के साधन हैं।

संयमधारी का स्मरण हमें संयम दिलाता है। रावण के एक मित्र ने रावण से कहा, "यदि आप राम का वेश धारण करके सीता के सामने जायेंगे, तो सीता तुरन्त आपके सामने देखेगी।" इस पर रावण कहता है कि "जब मैं राम का स्मरण करता हूँ, तब मुझे किसीके सामने देखने की भी इच्छा नहीं होती और संसार छोड़कर योगी बन जाने की इच्छा होती है"। सच है प्रभु का स्मरण करने से हमारी आत्मा प्रभुमय बन जाती है।

१९. पथप्रदर्शक

श्रुतज्ञान आत्मा के लिए पथप्रदर्शक के समान और आत्मा को तारनेवाला है। सम्यक् दृष्टि के पास अगर मिथ्याश्रुत आ जाय तो वह भी अलौकिक बन जाता है और मिथ्यात्वी के पास अगर आगम आ जाय तो आगम भी लौकिक बन जाता है। इसका कारण है अज्ञान। दवा विषमय होते हुए भी विधि के अनुसार लेने से रोग मिटाती है।

मतिज्ञान कारण है और श्रुतज्ञान कार्य। कारण और कार्य को अलग नहीं किया जा सकता। मतिपूर्वक ज्ञान बहिर्ज्ञान है।

जिस ज्ञान के द्वारा सामान्य व्यवहार चलता है वह मतिज्ञान है। मति अर्थात् समझ और श्रुत अर्थात् सुना हुआ।

भगवान महावीर स्वामी जो बोले, वह गौतम स्वामीने सुना और उसमें से आगम बनाये गये। इसी प्रकार वाणी श्रुत बन गई।

वस्तु की समझ मति है, वस्तु का नाम श्रुत है। पूर्वभूमिका मतिज्ञान है और उत्तरभूमिका श्रुतज्ञान है।

२०. आत्मा और कर्म

आत्मा और कर्म दूध और पानी की तरह मिल गये हैं। इस वजह से उसका रंग बदल गया है। कर्मों से आत्मा जडवत् बन गयी है। वास्तव में आत्मा पारदर्शक है किंतु जड़ के प्रति प्रेम की वजह से वह अपना स्वभाव भूल गयी है। उसका उद्धार करना है, उसे शुद्ध करने की प्रक्रिया करनी है। अतः आत्मा को पहचानने का प्रयत्न करो। साधना की प्रक्रिया से ही आत्मा की पहचान होगी। जिस प्रकार अत्यंत गरम लोहे के गोले के अणु-अणु में गरमी व्याप्त होती है, उसी प्रकार आत्मा के प्रदेशों पर कर्म लगे हुए हैं। उसके उद्धार के लिए तपश्चर्या और ज्ञानयोग दोनों की आवश्यकता है।

यदि आत्मा में एकाग्रता और रस जागृत हो जाय तो वह तुरन्त ही परमात्मा के समान बन जाती है। इसी तरह ज्ञानियों ने अंतर्मुहूर्त में कर्म खपाकर केवलज्ञान प्राप्त किया है।

२१. नय और प्रमाण

वस्तु का एकांगी दर्शन करानेवाला नय है। किसी एक ही बात को मुख्य बनाकर और जगत की अन्य सभी बातों को गौण बनाकर कुछ कहना नय है। नय अकेला सत्य नहीं है।

वस्तु के सभी पर्यायों के समाहार से एक वस्तु का ज्ञान होता है, यही प्रमाण है।

नय में मिथ्यात्व होता है और प्रमाण में सम्यक्त्व होता है।

जैन दर्शन प्रमाणरूपी पेट के अंदर नय को समाविष्ट करता है। सत्य और असत्य का मिश्रण अर्थात् जीवन का व्यवहार। व्यावहारिक असत्य में से सत्य को अलग कर लेना चाहिए। जैसे हम बोलते हैं— “हम गेहूँ बीन रहे हैं।” लेकिन वास्तव में हम गेहूँ में से कंकर बीनते हैं।

जीवन का व्यवहार नय और प्रमाण से ही चलता है। और नय प्रमाण को जान लेने के बाद सम्यक् दर्शन प्राप्त होता है।

वस्तु को पकड़ना यह नय है और उसे चारों ओर से देखना — समग्रता में देखना उसीका नाम प्रमाण है। जगत् के अन्य तत्त्वज्ञानियों ने ‘नय’ को ही अपनाया है, जबकि जैन तत्त्वज्ञान में ‘प्रमाण’ को भी अपनाया गया है।

नय की वजह से ही अलग-अलग संप्रदाय बने हैं ।

नाव में अगर संतुलन नहीं हो तो नाव डूब जाती है । उसी प्रकार अकेले नय के आधार पर स्थापित धर्म भी नष्ट हो जाता है ।

सभी सातों नय जब एकत्र होते हैं, तब प्रमाण बनता है । जैसे सौंठ और गुड़ के गुण अलग-अलग होते हैं । सौंठ वातनाशक है और गुड़ पित्तशामक है । किंतु जब सौंठ और गुड़ एकत्र हो जाते हैं तब वे वात, पित्त और कफ तीनों को दूर करते हैं ।

नय और प्रमाण का दर्शन जीवन में भी होता है । पहली मंजिल और दूसरी मंजिल यह नय है और अंतिम मंजिल यह प्रमाण है । पहले मजले पर से होनेवाला दर्शन एकांगी होता है लेकिन अंतिम मंजिल पर से होनेवाला दर्शन संपूर्ण होता है ।

सब नयों के समन्वय को प्रमाण कहते हैं । एक-एक रुपया मिलकर सौ रुपये बनते हैं । एक रुपया अर्थात् नय और सौ रुपये अर्थात् प्रमाण ।

नय के आधार पर चलनेवाला जगत् औरों के विचारों को जान नहीं सकता । इसीलिए विचारों को नय से शुरू करना चाहिए और प्रमाण से पूर्ण करना चाहिए । अकेला नय या अकेला प्रमाण चल नहीं

सकता । शब्द का अर्थ नय से होता है और बात का विचार प्रमाण से होता है । जैसे नय के आधार पर 'राजा' शब्द का एक ही अर्थ होता है, प्रमाण से उसके अनेक अर्थ होते हैं ।

नय के द्वारा अर्थ की प्राप्ति होती है और प्रमाण के द्वारा निर्णय लिया जाता है ।

“आत्मा” शब्द बोलने पर केवल शब्द बोला जाता है, एक में (नय में) 'संवेदन' और दूसरे में (प्रमाण में) 'चिंतन' है ।

प्रमाण को समझकर ही आचरण करना चाहिए । ज्ञान तो सब के पास होता है, किंतु उस ज्ञान के अनुसार आचरण करना कठिन है । जब क्रिया का चिंतन होता है तभी मन में भाव उत्पन्न होता है ।

क्रिया को 'अर्थ' मिल जाय तो प्रमाद चला जाता है, जब तक क्रिया को 'अर्थ' नहीं मिलता तब तक प्रमाद उड़ता नहीं है ।

शब्दों का अभ्यास तो बहुत किया, लेकिन अर्थ हम एक भी नहीं समझे । अर्थ समझ में आने के बाद ही आनंद उत्पन्न होता है और तब अर्थ के चिंतन से आत्मा का कल्याण होता है । अर्थ एकांत में उपासना और साधना की अपेक्षा रखता है । शब्द बनाना आसान है, लेकिन अर्थ करना कठिन है ।

नय को प्रमाण के घर में ले जाने से 'अर्थ' प्राप्त हो जाता है ।

२२. चैतन्य

जैसे जैसे चैतन्य का उपयोग बढ़ता जाता है, वैसे वैसे उसका विकास बढ़ता जाता है। मनुष्य के लिए सबसे अधिक उसका उपयोग है। उसके (ज्ञान और दर्शन के) उपयोग से वह कम से कम कर्मबंधन करता है। उदय में आये हुए कर्मों को प्रसन्नता से भोगने पर नये कर्म नहीं बंधते हैं और उदय में आये हुए कर्म खप जाते हैं। तिर्यच जब बीमार होते हैं, तब उनकी सेवा कौन करता है ? ऐसे विचार अगर करेंगे तो लगेगा कि हम कितने सुखी हैं।

गजसुकुमाल के मस्तक पर जब सिगड़ी जल रही थी, तब भी उनके मन में गजब की समता थी। वास्तवमें जीव का स्वभाव ही छोटे-छोटे दुःखों को बड़ा बना देता है। संसार की छोटी-छोटी बातों के बारे में आर्तध्यान करके वह नये कर्म बाँधता है

जीव की हर एक क्रिया और प्रवृत्ति के पीछे 'उपयोग' होता है। जागते-सोते हर एक समय हमारा उपयोग रहता है। सोया हुआ मनुष्य भी 'आग लगी है' ऐसा सुनकर फौरन बिस्तर से उठ भागता है।

खुद का पोषण करना, रक्षण करना और भविष्य का विचार करना ये तीनों कार्य चैतन्यवान व्यक्ति का 'उपयोग' है। उपयोग के कारण ही चींटी के समान जीव भी अपने पोषण और रक्षण का विचार करते हैं।

२३. आदर्श मनुष्य

आदर्श विशेषण है और मनुष्य विशेष्य है । किन्तु आज मनुष्य, मनुष्य का विश्वास नहीं करता है । वह शांति से बैठ भी नहीं सकता । वह बुरी आदतों के साथ जी रहा है । मनुष्य आज मनुष्य से जितना अधिक डरता है, पशु से उतना नहीं ।

मानव तो देवों की कोटि का है । यहाँ तक कि देवता भी मानव की मानवता को नमन करते हैं । हमें महापुरुषों के जीवन के जैसा जीवन जीने की इच्छा करनी है । अच्छे मनुष्य के लिए सबके मन में आदर और मान उत्पन्न होता है ।

सज्जन, संत, ज्ञानी महात्माओं के आदर्श समान होते हैं । भगवान महावीर के जीवन में त्याग की महत्ता है । सीताजी के पास सदाचार का अलंकार था ।

स्थितप्रज्ञ व्यक्ति जीवन को शाश्वत बना जाते हैं । छोटे प्रलोभनों में बिना अटके बहुत कुछ प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । परन्तु आज हम बिना किसी ध्येय के ही जीवन जी रहे हैं । संसार में ही आदर्श रखना चाहिए । आज हवा में तो मोक्ष की बातें होती हैं और जीवन में हाहाकार होता है ।

व्यक्ति का आदर्श जीवन किसी न

किसी को प्रेरणा जरूर देता हैं । जीवन अगर लोकप्रकाश के लिए जिया जाय तो ही वह सार्थक होता है । जीवन में त्याग की महत्ता है । तप, त्याग के बिना सिद्धि के फल कदापि प्राप्त नहीं होते । जीवन में कोई एक ध्येय, एक आदर्श आवश्यक है । चाहे हम सूर्य-चंद्र न भी बन सकें, किंतु सद्गुण का एक छोटा-सा तारा बनकर जीवन में प्रकाश अवश्य फैला सकते हैं ।

* * *

- जितनी हानि न कर सके, दुश्मन द्वेषी होय ।
अधिक हानि निज मन करे, जब मन मैला होय ॥
- मां बापू प्रिय बंधु जन, भला करे सब कोय ।
अधिक भला निज मन करे, जब मन उजला होय ॥
- जो चाहे बंधन खुले, मुक्ति दुखों से होय ॥
वश में कर ले चित्त को, चित्त के वश मत होय ॥
- साधु कहावन कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर ।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर ॥
- सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय ।
सात समुंद की मंसि करूँ, गुरुगुन लिखा न जाय ॥

* * *

२४. एक्स-रे

मन में जो भी विचार आते हैं, उन विचारों की एक आकृति होती है। जिस तरह 'एक्स-रे' में शरीर के अन्दर का रोग दिखाई देता है, उसी तरह मनःपर्यवज्ञानवाले को सामनेवाले मनुष्य के मन के विचारों के आकार दिखाई देते हैं।

अवधिज्ञान का क्षेत्र मनःपर्यवज्ञान से बड़ा है। वह समस्त लोक तक फैला हुआ है। जबकि मनःपर्यवज्ञान का क्षेत्र सीमित है। फिर भी मनःपर्यवज्ञान में सूक्ष्मता है और अवधिज्ञान में स्थूलता। अवधिज्ञान दर्पण के समान है। वह किसी को भी हो सकता है लेकिन मनःपर्यवज्ञान सम्यक्ज्ञान के बिना होता ही नहीं। मनःपर्यवज्ञान केवलज्ञान की पूर्वभूमिका है। सम्यक्ज्ञान के अभाव में अवधिज्ञान विभंगज्ञान बनकर उसके पतन का भी निमित्त बन जाता है। अवधिज्ञान हो जाने के बाद उस से इन्द्रियों की सहायता के बिना भी दुनिया के पदार्थों को जान सकते हैं।

मनःपर्यवज्ञान के आने से अवधिज्ञान चला नहीं जाता। उससे सिर्फ स्थूल वस्तु को देखा जा सकता है। मनःपर्यवज्ञान सूक्ष्म वस्तु बताता है। रूपी में स्थित सूक्ष्म वस्तु अर्थात् मन के भावों को देखने का सामर्थ्य मनःपर्यवज्ञान में है।

अवधिज्ञान संसारी को भी हो सकता है, जब कि मनःपर्यवज्ञान साधु को ही होता है।

२५. आत्मा के अलंकार

अलंकार शास्त्र में आत्मा के नौ प्रकार कहे गये हैं, जिनमें निवृत्तिमय अलंकार तीन हैं :

(१) सामायिक (२) प्रतिक्रमण (३) पौषध ।

प्रवृत्तिमय तीन अलंकार निम्न हैं :

(१) प्रक्षाल (२) पूजा (३) स्नात्र ।

आवृत्तिमय तीन अलंकार इस प्रकार हैं :

(१) दान (२) शील (३) तप

(१) सामायिक अर्थात् समताभाव ।

सामायिक में अरिहंत का ध्यान धरना, सुंदर बोधदायक पुस्तकों को पढ़ना आदि किए जाते हैं ।

(२) प्रतिक्रमण अर्थात् पापों की आलोचना । अर्थात् दिनभर में और समग्र रात्रि में लगे हुए पापों की आलोचना-आलोचना लेना । उसमें बोलने के सूत्र प्राभाविक हैं, प्रभावपूर्ण हैं । भावपूर्वक उन्हें बोलने से कर्मक्षय होता है । 'इरियावहिय' सूत्र 'सामायिक-धर्म' का मूल है । हर एक धार्मिक क्रिया और चारित्र, सामायिक से आरंभ होते हैं ।

(३) पौषध अर्थात् एक दिन का चारित्र । उस दिन गुरु की आज्ञा में रहना होता है । उस दिन उल्लास, अच्छी भावनाओं तथा अच्छी क्रियाओं की वजह से मन एकदम शांत रहता

है । उस दिन घर की, परिवार की, समाज की कोई चिंता मनुष्य को नहीं सताती ।

(४) प्रक्षाल - प्रभु को स्नान कराने की क्रिया से हमें अपने कर्ममल को धोना चाहिए । इससे आत्मा स्वच्छ और शुद्ध होती है ।

(५) पूजा - अरिहंत की पूजा इसलिए करनी चाहिए कि हमें उनके जैसा होना है । पूजा करते समय प्रभु के गुण हमारी आत्मा के अंदर उतरें, ऐसी भावना मन में धारण करनी चाहिए । उनके पान से हमें मोक्ष प्राप्त करना है ।

(६) स्नात्र - अर्थात् प्रभु का जन्माभिषेक, जैसा कि मेरु पर्वत पर इन्द्र और इन्द्राणी मनाते हैं । उल्लास से, उमंग से स्नात्र पढ़ाने से कर्मों का क्षय होता है, और उत्तम पुण्य का उपार्जन होता है ।

(७) दान - शुभ भावना से अगर दान दिया जाय तो वह कर्मों का क्षय करनेवाला होता है । वह परिग्रह की मूर्छा उतारनेवाला एक चमत्कारी औषध है ।

(८) शील - आत्मकल्याण के लिए ही है ।

(९) तप - यथाशक्ति, समता के साथ, करने से त्वरित कर्मक्षय होता है ।

२६. योग की विशिष्टता

सभी जादुओं में योग का जादू सर्वश्रेष्ठ होता है । लौकिक चमत्कार वह सच्चा चमत्कार नहीं होता है, लेकिन जो आत्मा में परिवर्तन ला दे वही सच्चा चमत्कार है । अधम आत्मा भी योग से महान बन जाती है । योग से चंचल मन स्थिर और स्वस्थ होता है । जब तक मन स्थिर न हो, तब तक क्रिया व्यर्थ होती है । वह आसमान में बनाये हुए चित्र के समान होती है । क्रिया का जब तक असर मन पर न हो, तब तक क्रिया का कोई मूल्य नहीं है । अच्छा वातावरण और अच्छी सुगंध जिस प्रकार मन को प्रफुल्लित करती है, उसी प्रकार क्रिया भी मन को प्रफुल्लित करनेवाली होनी चाहिए । हम जो क्रिया करते हैं, वह हमें और किसी के लिए नहीं, लेकिन अपनी आत्मा के लिए ही करनी चाहिए ।

मन की समाधि योग से मिलती है । इत्र की खुशबू जिस प्रकार छिपी नहीं रहती, उसी प्रकार योगी पुरुषों का प्रभाव भी छिपा नहीं रहता । सुंदर मन अच्छे परमाणु फेंकता है । पापी और रोगी मनुष्य अपनी साँस के द्वारा खराब परमाणुओं को फेंकते हैं ।

जिस आत्मा ने योग के द्वारा मन को बहुत ही मजबूत बना लिया है, वह आत्मा

प्रबल फव्वारे की तरह उत्तम पुद्गलों को फेंकती है । भावनाएँ यदि अमंगल हों तो कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता ।

वस्त्रों के ऊपर अगर अच्छी छपाई करनी हो तो कपड़ा स्वच्छ और अच्छा होना चाहिए, उसी प्रकार मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन को भी योग से धोना चाहिए । योग मन को स्वच्छ करता है ।

योग का प्रभाव अपूर्व है । वह कर्मों को जला देता है ।

योग से जिसका मन शुद्ध नहीं हुआ है, वह व्यक्ति पशु के समान जीवन बिताता है । योग के द्वारा मन, वचन और काया सुंदर एवं संस्कारीक बनते हैं । ज्ञान, दर्शन और चारित्र से मनुष्य का मन योग की ओर उन्मुख होता है ।

लेकिन बिना ज्ञान के योग व्यर्थ है ।

‘पर’ में भटकते रहना बहुत ही आसान है, किंतु आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना और उसी ज्ञान में रमण करना यह कठिन है ।

२७. करुणा और त्याग

सम्यक् दृष्टिवाली आत्मा के हृदय में करुणा का स्रोत बहता है । मानव के जीवन में करुणा की स्निग्धता हो तो उसके उत्तर में सुंदर बगीचा तैयार होगा ही । करुणासिक्त हृदय की तुलना न तो मोम के साथ की जानी चाहिए, और न मक्खन के साथ । क्योंकि मोम अग्नि के संपर्क से पिघलता है, इसी तरह मक्खन भी अग्नि के संस्कार से घी बन जाता है, किंतु करुणासिक्त हृदय तो दूसरों के दुःख देखते ही पिघल जाता है । दूसरों का दुःख उसका अपना दुःख बन जाता है । जब तक वह दूसरों का दुःख दूर नहीं कर लेता, तब तक उसे चैन प्राप्त नहीं होता । अहिंसक आत्मा दूसरों का दुःख देखकर केवल 'अरे ! अरे !' नहीं करती, किंतु वह यह भी मानती है कि जबतक दूसरों का दुःख दूर नहीं करेंगे, तब तक विश्व में कभी सुख और शांति नहीं आयेगी ।

हम अधिक परिग्रह रखकर प्रजा का दुःख दूर नहीं कर सकते । व्यक्ति स्वयं त्याग करता है, तब ही दुनिया में सृजन होता है ।

२८. दृष्टि

ज्ञान बाहर की वस्तु को देखता है, किंतु दृष्टि अंदर की वस्तु को देखती है। बाहर का ज्ञान याने पुस्तक, जबकि दृष्टि पुस्तक के अंदर रहे हुए ज्ञान का नाम है। महापुरुष 'दृष्टि' रखते हैं, जबकि जगत् ज्ञान की ओर भागता है। चाहे थोड़ा ही पढ़े हों, फिर भी जीवन में अगर 'दृष्टि' आ जाय तो जीवन सुधर जाता है।

किसी समय करोड़ों रुपयों का कोई यंत्र बिगड़ गया। उसे ठीक करने के लिए बहुत से आदमी आये। लेकिन यंत्र में क्या खराबी है, यह कोई समझ न सका। अंत में एक दृष्टिवाला (होशियार) इंजिनियर आया और बॉयलर यन्त्र के जिस भाग में 'रिपेरिंग' करना था, वहाँ दो चार बार हथौड़ा मारा, जिससे यंत्र चालू हो गया।

इंजिनियर ने १००१) डॉलर माँगे। उससे जब पूछा गया कि १०००) डॉलर से १) डॉलर ज्यादा क्यों? तो उसने जवाब दिया, "हथौड़ा मारने का मूल्य एक डॉलर है और बुद्धि का (दृष्टि का) १००० डॉलर।"

दुनिया में जो लोग आगे बढ़े हैं, उनके पास ज्ञान और दृष्टि दोनों होते हैं। पीछे रहनेवालों के पास केवल ज्ञान होता है। ज्ञान

जगत् के काम आता है, जबकि 'दृष्टि' आत्मा के काम आती है ।

दृष्टि का अभाव ही मनुष्य को कदाग्रही बनाता है ।

दृष्टिवान् मनुष्य दुःख देखकर घबड़ाता नहीं है और न सुख में आनंदित—मुग्ध ही हो जाता है । वह दूसरों के दुःख में करुणा और अपने दुःख में धैर्य धारण करता है । दृष्टि के बिना ज्ञान व्यर्थ है ।

हमें बाहर के छिलके तो दिखाई पड़ते हैं, लेकिन अंदर का सत्त्व दिखाई नहीं पड़ता । जब दृष्टि आ जाती है, तब अंदर का सत्त्व दिखाई पड़ता है । कैमरे से व्यक्ति की बाह्य आकृति फोटो में आती है, जबकि एक्स-रे में व्यक्ति के अंदर का रोग भी दिखाई पड़ता है । एक्स-रे अर्थात् अंतर की दृष्टि और कैमरा अर्थात् बाह्य दृष्टि ।

मनुष्य को शरीर के रोग की तो चिंता होती है, किंतु आत्मा के रोग की नहीं । टी. बी. का नाम सुनते ही चेहरा फीका पड़ जाता है, आनंद उड़ जाता है और वह शीघ्र ही उस दर्द को दूर करने का इलाज शुरू कर देता है । लेकिन आत्मा के रोग की वह चिंता नहीं करता ।

अनंत काल से आत्मा को क्रोध, लोभ,

मान और माया का रोग लगा हुआ है, इससे आत्मा संसार में भटक रही है । जब हमें सच्ची दृष्टि प्राप्त होगी, तब ही आंतरिक रोगों की चिंता जागृत होगी और उसका हम इलाज शुरू करेंगे

आठ साल के बालक को “तुम्हें टी. बी. हुआ है,” ऐसा अगर डॉक्टर कहे तो भी वह तो हँसता ही रहता है । कारण कि टी. बी. का क्या अर्थ है, यह वह समझता ही नहीं है, इसीलिए उसे इसकी चिंता भी नहीं होती । उसके रोग की चिंता तो उसके माता-पिता को होती है । हम भी उस आठ साल के बालक जैसे हैं, क्योंकि हम भी क्रोध, लोभ, मान, माया इत्यादि दुर्गुणों की विनाशकता को जानते नहीं हैं, इसलिए हम भी उन दुर्गुणों की चिंता नहीं करते हैं और उन्हें दूर करने का इलाज भी नहीं करते हैं ।

जब तक शुद्ध दृष्टि या दर्शन प्राप्त नहीं होगा, तब तक हम आत्मकल्याण नहीं कर सकेंगे ।

२९. श्रद्धा

किसी ग्वालिन ने व्याख्यान में सुना कि, “श्रद्धा से संसार-सागर को पार किया जा सकता है !” एक दिन व्याख्यान सुनने जाते समय उसके मार्ग में नदी आ गई । उसने सोचा, ‘अगर भगवान् पर श्रद्धा हो तो संसार-सागर को भी पार कर सकते हैं तो यह तो नदी ही है ।’ ऐसा सोच कर संपूर्ण श्रद्धा के साथ उसने नदी में पाँव रखा, जैसे वह जमीन पर चल रही हो वैसे ही पानी के ऊपर चली गई । व्याख्यान में समय पर पहुँचने पर गुरु महाराज ने पूछा, “ऐसी बाढ़ में तू कैसे आई ?” ग्वालिन ने जवाब दिया, “प्रभु के नाम से यदि संसार-सागर को पार कर सकते हैं, तो मैं नदी को पार क्यों नहीं कर सकती ? मैंने तो नदी में पाँव रखा और नदी में मार्ग हो गया और मैं व्याख्यान में आ गई ।”

यह सुनकर गुरु को आश्चर्य हुआ । उन्होंने स्वयं प्रयोग करने का निश्चय किया । वे नदी में पाँव रखकर चलने लगे, लेकिन जैसे ही उन्होंने पानी में पाँव रखा, वे नदी में डूबने लगे और नदी पार नहीं कर सके । कारण यह कि जिस काम में श्रद्धा हो, वही काम पूर्ण हो सकता है । जीवन में अगर मात्र प्रयोग करें तो उसमें सफलता नहीं मिलती ।

अश्रद्धा से कभी कार्य सफल नहीं होता ।

यदि कभी काम में पराजय मिले तो भी श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, प्रत्युत दुगुने जोश के साथ काम करना चाहिए और आखिर श्रद्धा के कारण उसमें सफलता मिलती है । सर्वप्रथम तो आत्मा के विषय में श्रद्धा होनी चाहिए कि आत्मा अमर है, उसका कभी नाश नहीं होता और होगा भी नहीं । देव, गुरु और धर्म पर अपार, अटल श्रद्धा रखनी है ।

आत्मबंधन के तीन मुख्य कारण हैं : भ्रम, शंका और अज्ञान । भ्रम आत्मा को जड़ता की तरफ ले जाता है, शंका सच्चाई से दूर रखती है और अज्ञान सत्य का श्रवण नहीं करने देता ।

३०. जीवन की मधुरता

शिक्षा मनुष्य को शिक्षित बनाने के लिए है। जीये बिना चारा नहीं है, किंतु जीवन का दर्शन करके जीना ही सच्चा जीना है। हम वस्तु को देख सकते हैं, किंतु उसके हृदय को जान नहीं सकते।

नारियल के ऊपर छिलके का आवरण है, लेकिन अंदर मीठा खोपरा होता है। उसी प्रकार हमारा जीवन आहार, निद्रा, भय, मैथुन से घिरा हुआ है। हम बाह्य पदार्थों, धन-समृद्धि से सुख मानते हैं, किंतु जिसको अंदर के आत्मरूपी खोपरे का स्वाद चखने को मिला है, उसका दर्शन हुआ है, उसको जीवन की मधुरता समझ में आती है।

हम सभी प्रवासी हैं, यहाँ मुसाफिरखाने में आराम करके हमें वापिस प्रवास पर चले जाना है और जल्दी ध्येय तक पहुँच जाना है।

३१. ज्ञान-प्रकाश

ज्ञान से श्रद्धा टिकी रहती है, इसलिए ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के साधनों की उपासना करनी चाहिए। बिना तत्त्वज्ञान के, अन्य ज्ञान टिक नहीं सकता। तत्त्व का ज्ञान जीवन में सुख और शांति देनेवाला है। नव तत्त्व के समूह से प्राप्त बोध जीवन का दर्शन कराता है। ज्ञान सर्व गुणों का मूल है। अंधकार में डर लगता है, प्रकाश में नहीं लगता। उसी तरह अज्ञानरूपी अंधकार जहाँ तक हमारे जीवन में है वहाँ तक हमें भय लगता है, लेकिन ज्ञानरूपी प्रकाश के आते ही हमारा भय चला जाता है। ज्ञान से स्वस्थता, शांति और समता मिलती हैं। ज्ञानप्राप्ति के लिए पहले मौन और एकांत बहुत आवश्यक होते हैं। आत्मा की खोज के लिए ज्ञान की आवश्यकता है।

वस्तु को प्राप्त करने से पहले वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद उसका उपयोग कैसे करना, उसकी क्या महत्ता है, यह मालूम होता है।

३२. निखालसता

जिनके पास से विद्या लेते हैं, उन्हें पूजनीय गुरु मानना चाहिए । जिसने ज्ञान का प्रकाश दिया और भटके हुए को मार्ग बताया ऐसे गुरु की पूजा करनी चाहिए । उनके उपकार का बदला हम कई जन्मों तक भी नहीं चुका सकते ।

एक नाई को एक मंत्र आता था । उस मंत्र की सहायता से वह अपनी थैली को आसमान में लटका कर रखता और जरूरत पड़ने पर उसे उतार लेता था । एक साधुने नाई के पास से यह मंत्र-विद्या सीख ली । वह दूर कहीं जाकर एक तुंबा पानी से भरकर आसमान में लटका कर रखता । जब लोगों ने उससे पूछा कि “आपने यह विद्या किस के सीखी ?” तब साधुने कहा, “मैंने यह विद्या हिमालय पर जाकर और कठिन तप करके सीखी है ।”

साधु ने गुरु का नाम छिपाया, उनकी अवगणना की, इसलिए आसमान में लटका या हुआ वह तुंबा साधु के सिर पर जाकर पड़ा, जिससे उसका सिर फट गया ।

३३. शरीर

जहाँ देवों और नारकों की उत्पत्ति होती है, वह स्थान अचित्त होता है, जबकि मनुष्य और तिर्यच के उत्पत्तिस्थान सचित्त होते हैं। जीवों के शरीर पाँच प्रकार के होते हैं : औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण। मनुष्य और तिर्यच के शरीर औदारिक होते हैं, जिसके द्वारा सुख-दुःख का अनुभव किया जाता है। देवों और नारकों के वैक्रिय शरीर होते हैं, जो पारद की भाँति अलग हो जाते हैं और पुनः मिल भी जाते हैं।

आहारक शरीर पुण्यात्मा चौदह पूर्वधरों को ही हो सकता है। जब उन्हें शंका समाधान हेतु तीर्थकर परमात्मा के पास जाना होता है तब वे आहारक शरीर बनाकर अंतर्मुहूर्त में वहाँ जाकर वापस आ सकते हैं। तैजस और कार्मण शरीर संसार के हर एक जीव को होता है। औदारिक से वैक्रिय शरीर अधिक सूक्ष्म होता है, वैक्रिय से आहारक अधिक सूक्ष्म और आहारक से तैजस् और कार्मण शरीर अधिक सूक्ष्म होते हैं।

प्रथम तीन मर्यादित हैं, परन्तु तैजस् तथा कार्मण अनन्त हैं। मृत्यु हो जाने पर औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर को छोड़ना पड़ता है, परन्तु शेष दो तैजस् और कार्मण शरीर साथ जाते हैं।

३४. देव

देव चार प्रकार के होते हैं : भवनपति, व्यंतर, वैमानिक और ज्योतिषी । प्रथम दो हमारे नीचे होते हैं और दूसरे दो हमारे ऊपर ।

देवों के पास अपार सुख, वैभव और समृद्धि होते हैं, लेकिन त्याग नहीं होता; इसी से वे उत्तम पुरुषों के चरणों में नत होते हैं । त्याग की ताकत मनुष्य में होती है । त्याग से राग का नाश होता है और आत्मा उच्च स्थान को प्राप्त करती है ।

प्रथम दो देवलोक के देवताओं (सौधर्म और ईशान) के भोग की इच्छा की तृप्ति शरीर से होती है, परन्तु बाकी के ऊपर के देवलोक में भोगेच्छा की तृप्ति शरीर से नहीं, अपितु केवल देवी को देखने, उसके शब्दों को सुनने या स्मरण मात्र से ही हो जाती है ।

त्याग का फल मोक्ष है । उत्तम देवगण भी तैंतीस सागरोपम तक आत्मस्मरण करते हैं । अनुत्तर देवों का संगीत मोती में से प्रकट होता है और वे संगीत में आत्मस्मरण करते हैं । आत्मा की संवादमय बातों और संगीत से आत्मस्मरणता में वृद्धि होती है ।

त्याग का परिणाम संवाद है । त्यागी को प्रसिद्धि से दुःख होता है । वे नाम के लिए नहीं, काम के लिये जीते हैं ।

टेलिफोन जोड़ने से जैसे फौरन घंटी बजती है, उस प्रकार अगर भक्ति सच्ची है तो उसका परिणाम भी तुरंत ही मिलता है । मयणा ने प्रभु की स्तुति की और प्रभु के कंठ में पड़ी हुई पुष्पमाला उछल कर उसके ऊपर पड़ी ।

प्रार्थना एक ऐसी चाबी है, जिससे जीवन के द्वार खुल जाते हैं, पशुता चली जाती है और प्रभुता अंदर आ जाती है ।

* * *

- प्रेम बिना धीरज नहीं, विरह बिना बैराग ।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥
- साधू सीपि समुद्र की, सतगुरु स्वाती बूँद ।
तृषा गई इक बूँद से, क्या ले करूँ समुँद ॥
- राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय ।
जो सुख साधु संग में, सो बैकुंठ न होय ॥
- परमेसुर अरु परमगुरु, दोनों एक समान ।
'सुंदर' कहत बिसेष यह, गुरु तें पावै ज्ञान ॥

* * *

३५. विवेक

विवेक अर्थात् अच्छी बुद्धि, जो हमें मिली है। पागल को देखकर हमें मन में उसके लिए दया जागृत होती है क्योंकि पागल के पास विवेक नहीं होता। नयन, नासिका, कान, मुख एवं शरीर तो हमें और पागल को समान ही मिले हैं। लेकिन हम वही देखते हैं, जो हम देखना चाहते हैं, जब कि पागल मनुष्य जो नहीं देखने जैसा है वही देखता है और जो बोलने जैसा नहीं है, वही बोल देता है। किंतु आज तो हम भी जो नहीं देखने जैसा है वही देखते हैं। इसीसे हमारा जीवन कटु हो गया है। आज इन्सान दुःखी है, क्योंकि उसने उलटा रास्ता अपनाया है। उसने इन्द्रियों का स्वच्छंद और विवेकहीन उपयोग करना शुरू कर दिया है।

अगर जीवनसागर में तैर नहीं सकेंगे तो जीवन व्यर्थ हो जायेगा। मनुष्यजीवन प्राप्त करके डूबना नहीं है, तैरना है : इन्द्रियों के द्वारा तैरना है। जो मिला है उसका सदुपयोग करें।

३६. ध्यान

सद्गुण की पराकाष्ठा अर्थात् शुक्ललेश्या और दुर्गुणों की पराकाष्ठा अर्थात् कृष्णलेश्या । इसलिए हमें सद्गुणों में वृद्धि करते और दुर्गुणों को छोड़ते जाना चाहिए । शुक्ल ध्यानवाली आत्मा चंद्रमा की भाँति शीतल और उज्ज्वल ही रहती है और कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न आवें वह अपनी आत्मा को श्वेत ही रखती है । शुक्ल ध्यानवाले का रूप पूर्ण चाँदनी के समान और स्पर्श शिरीष के पुष्पों से भी अधिक कोमल होता है । उसकी आवाज भी मधुर होती है ।

कच्चा मन और कच्चा पारा जीवन का नाश कर देते हैं । मरा हुआ मन और मरा हुआ पारा आत्मा का उद्धार कर देते हैं ।

३७. सुख

जो सुख भौतिक साधनों से प्राप्त नहीं होता, वह सुख आत्मिक साधनों से प्राप्त होता है। भौतिक सुख से परलोक बिगड़ जाता है, जबकि साधना से परलोक सुधर जाता है। सुख बाहर नहीं, आत्मा में ही है। भौतिक सुख जड़ है, आत्मिक सुख चैतन्यमय है।

सुख जड़ पदार्थों में नहीं, आत्मा में है। सुख कोई दे नहीं सकता, उसे तो अपने आप ही प्राप्त करना है। भगवान सुख नहीं दे सकते। भगवान का समागम चंडकौशिक नाग और जमाली दोनों को हुआ। नाग का उद्धार हो गया और जमाली डूब गया। भगवान की आज्ञा के अनुसार जीयेंगे तो तैर जायेंगे और सुखी होंगे।

स्वयं की निर्बलता को समझते हो, फिर भी उसमें से बाहर निकल सकते नहीं हो तो कोई बात नहीं, लेकिन हमें अपनी निर्बलता का भान अवश्य होना चाहिए।

३८. कर्म और ब्याज

प्रियपात्र बनकर भी बैर मोल लिया जा सकता है, इसलिए कर्म करने से पहले विचार कर लेना चाहिए ।

एक वृद्धा ने किसी प्रकार की लिखापढ़ी के बिना एक सेठ के पास बीस हजार रुपये रखे । जब वह लेने के लिए गई, तब सेठ ने इन्कार कर दिया । वह रकम वृद्धा दान में खर्च करना चाहती थी । रकम न मिलने से उसे आघात लगा और उस आघात से वह मर गयी ।

नव माह बाद सेठ के घर पुत्र का जन्म हुआ । पुत्र के पीछे सेठ ने बहुत पैसे खर्च किये । पुत्र चतुर, बाहोश, बुद्धिमान् था, परन्तु जब शादी की तैयारी चल रही, थी, तभी बीस साल का अरमान भरा वह पुत्र मर गया । इससे सेठ को भयंकर वज्र के समान आघात लगा । तब उनके मुनीम ने उन्हें समझाया कि “वह वृद्धा ही आपके पुत्र के रूप में आई थी और बीस हजार के बजाय अनेक हजार रुपये बीस साल में खर्च करा के गई और ब्याज में आपको रोना मिला ।”

सेठ कर्म का मर्म खोजते ही रह गये ।

३९. अंतरेच्छा

मातापिता को पुत्र की सद्गति की ही इच्छा रखनी चाहिए । खानपान में तथा शिक्षा के विषय में पुत्र की आत्मोन्नति का ख्याल रखना चाहिए । एक माता अपने लाड़ले को लोरी सुनाती है, —“हे पुत्र ! तू शुद्ध-बुद्ध है, निरंजन-निराकार है, अजरअमर है । संसार का त्याग कर आत्मा को अमर बना । तुझे इस जन्म में सिद्धियों को बाहर लाना है । दुनिया का कोई रंग तुझे लगनेवाला नहीं है । तेरा रंग श्वेत है, ध्यान रहे, संसार की मोहमाया में फँस मत जाना ! संसार स्वप्नवत् है । आँख बंद होते ही कुछ नहीं रहेगा ।”

साधना के द्वारा अंतर का बलौना कर आत्मशुद्धि करनी है । आत्मशुद्धि के ध्येय के बिना कोई भी क्रिया दंभ है, केवल प्रदर्शन है ।

४०. ध्येयहीन यात्रा

संघ जब यात्रा के लिए जा रहा था, तब शांतिप्रिय भाई ने कहा : “कारणवशात् मैं इस संघ में आ नहीं सकूँगा । मेरी इस तुंबी को साथ ले जाइए और हरेक तीर्थस्थान में उसे स्नान करवा कर उसे पवित्र बनाइए ।” संघ जब यात्रा करके वापस आया, तब उन्होंने अपनी तुंबी वापस माँगी और यात्रियों को भोजन कराया । भोजन में उसी तुंबी का साग बनाया । तुंबी बिल्कुल कडुवी थी, उसका साग खाकर सबका मुँह कडुवा हो गया ।

उस भाईने कहा, —“यह तुंबी अनेक नदियों में स्नान करके आई है, फिर भी मीठी क्यों नहीं हुई ?” हम भी कितनी यात्राएँ करते हैं लेकिन जब तक अपने अंतर को शुद्ध नहीं बनायेंगे तब तक ऐसी यात्रा का अर्थ ही क्या ? उद्यम में जीवन पूरा नहीं करना है, वरन् जीवन में आत्मा का पूर्ण विचार करना है ।

४१. अरूपी आत्मा

जिस प्रकार एरंडा उछलकर ऊपर ही जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी देह में से निकलकर ऊपर जाने का प्रयत्न करती है; लेकिन जिस गति का आयुष्य बाँधा गया होता है, आत्मा को उसी गति में जाना पड़ता है ।

आत्मा के साथ रहे हुए कार्मण-तैजस् शरीर को ही भोजन चाहिए; अतः जहाँ खाते हैं, वहाँ पर शरीर बंधता है ।

आत्मा के प्रवेश के बाद प्रथम आहार फिर शरीर, इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इस तरह छः प्रकार से हमारा गठन होता है । आत्मा तो आत्मा ही रहती है । चाहे वह तिर्यच गति में जावे या नरक में, आत्मा का स्वरूप बदलता नहीं है । आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन-निराकार है, अजर-अमर और अरूपी है ।

हमें अपने से ऊपरवालों का नहीं, नीचेवालों का विचार करके साधना में आगे बढ़ना चाहिए ।

४२. मन

मन अगर एक बार चंचल हो जाए तो कदम-कदम पर वह अस्थिर ही बना रहता है । कभी वह उपाश्रय में शादी का विचार करने बैठ जाता है और कभी ब्याह के मंडप में भी साधुता के बारे में सोचने लगता है । रथनेमि का मन राजुल के रूप से हार गया था, लेकिन अनुकूल निमित्त मिलते ही फिर से स्थिर हो गया । अंतर के वात्सल्य से बुरा आदमी भी सुधर जाता है ।

प्रभु के रोम-रोम में यह भावना थी : “सवि जीव करूँ शासनरसि” इसीलिए प्रभु ने चंडकौशिक, अर्जुनमाली और चंदनबाला का उद्धार कर दिया ।

हमें मन को जोड़ना है, मन को मोड़ना है और मन को जीतना भी है । शीलगुणसूरि से रूपसुंदरी (वनराज की माता) ने कहा था : “मैंने कभी पानी का प्याला भी खुद नहीं भरा था, आज मैं लकड़ी के गठर उठाकर चल सकती हूँ ।” यही मन पर विजय है ।

४३. प्रेम

जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही आत्मा जगत् के अन्य प्राणियों में भी सन्निहित है । जिस प्रकार मुझे सुख पसंद है और दुःख पसंद नहीं है, उसी प्रकार जगत् के सर्व जीवों को भी सुख पसंद है ।

खराब काम करनेवाले को धिक्कारना उचित नहीं है, वरन् उसे प्रेम से सन्मार्ग पर लाना चाहिए । हम जब कभी खराब वातावरण में घिर जाते हैं, तब न करने जैसा कार्य भी कर बैठते हैं । उस समय संतों की वाणी और संतों के आशीर्वाद ही हमारे पापों को धो सकते हैं ।

प्रभु के पास तो वेश्या, चोर, व्यभिचारी, शराबी सब आये, लेकिन प्रभु ने उनका तिरस्कार नहीं किया, बल्कि उन लोगों को प्रेम से शुभ तत्त्व में जोड़ कर उनका हृदय परिवर्तन कर दिया । प्रभु के पास तो करुणा का स्रोत बहता ही रहता है, इसीलिए वे समस्त जगत् सुखी बने, कर्मों से मुक्त बने और मोक्ष के अनंत सुख प्राप्त करे ऐसी कामना करते हैं ।

४४. अहं का अंधकार

दुर्विचारों का संगठन बहुत खतरनाक होता है । यह व्यक्ति को परमात्मा तक पहुँचने नहीं देता । असत्य के माध्यम से मिला हुआ सुख क्षणमात्र आनंद देता है लेकिन उसका भविष्य कितना दुःखमय होता है, क्या इसका कभी विचार किया है ?

जो व्यक्ति परिणाम को देखकर अपना कार्य नहीं करता उसका भविष्य कष्टमय बन जाता है । क्षणिक सुख के लिए वह व्यक्ति अपने अनंत भव बिगाड लेता है ।

अगर आपको आत्मा से परिचय प्राप्त करना है तो आप को अपना आचरण आत्मा के अनुकूल बनाना पड़ेगा । जीवन में यदि सत्य और सदाचार की प्रतिष्ठा नहीं होगी तो जीवन दुर्गन्धमय बन जाएगा । उसकी पवित्रता नष्ट हो जायेगी । इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि अगर आपको जीवन में कुछ पाना है तो आप असत्य की भूमिका छोड़ दें और अपने जीवन को सद्गुणों से सुगन्धमय बनावें ।

'मैं सब जानता हूँ' यह मन का दंभ है । मन के इस अहम् को छोड़ दो । परमात्मा के द्वार पर मूर्ख बनकर जाओगे तो विद्वान् बन कर लौटोगे, जीवन में कुछ

प्रकाश लेकर आओगे ।

एक विद्वान् एक संत के पास गया । विद्वान् के मन में अहम् था । वह सोचता था कि मैं सब कुछ जानता हूँ । वह संत से कहने लगा कि मैं (M. A. B. ED.) हूँ । मैंने (PhD.) की है । मैं आत्मा के बारे में कुछ जानना चाहता हूँ । जब तक मन में अहम् बैठा हो तब तक जानकारी कैसे प्राप्त होगी ?

संत ने विद्वान् को कप और रकाबी दी और कॉफी बनाकर लाया । कॉफी को वह कप में डालता गया । कप भर गया रकाबी भी भर गई, फिर भी वह कॉफी डालता ही रहा । यहाँ तक कि कॉफी उभर कर नीचे गिरने लगी । विद्वान् के शर्ट और.....पायजामें पर भी कॉफी गिर गयी । इसपर विद्वान् ने संत से कहा कि—“यह आप क्या कर रहे हैं ? मेरे कपड़े सब खराब हो गए ।”

संत ने विद्वान् से कहा— “यह आपके सवाल का जवाब है ।” तब उसने संत से कहा - “ आपकी बात मैं समझ नहीं पाया, आप ही कुछ बताइए ।

संत ने कहा—“भरे हुए कप में कॉफी डालने से कुछ फायदा नहीं । जैसे भरे कप

में कॉफी डालने से उभर गयी और कपड़े खराब हो गये, वैसे ही जहाँ तक दिल और दिमाग का कप खाली नहीं होगा, तब तक मेरा कहना उभार जैसा होगा । आप खाली होकर आँ, तो ही मैं आपको कुछ समझा सकूँगा ।”

आदमी जब जगतके ज्ञान से शून्य बनता है, तभी वह स्वयं का परिचये प्राप्त कर सकता है ।

जब परमात्मा की शरण में जाओगे, जब परमात्मा को समर्पित हो जाओगे, तब ही आपका जीवन, सत्य के प्रकाश से उज्ज्वल बनेगा ।

सत्य और सदाचार से युक्त जीवन प्रस्थापित करने के लिए साहस अपेक्षित है, क्योंकि साहस के बिना साधना नहीं होगी । जहाँ साधना नहीं, वहाँ सिद्धि भी नहीं होगी ।

आपको जानकारी कितनी है, इस से कोई मतलब नहीं । आप क्या जानते हैं, इसका भी नहीं बल्कि आप क्या करते हैं, उसका अधिक महत्त्व है । आप के जीवन में (Practical) कितना है, वही देखा जाता है ।

जन्म से मृत्यु की उत्पत्ति होती है । हमारा सारा जीवन मृत्यु से घिरा हुआ रहता है । उसमें असत् वस्तु का ग्रहण मृत्यु की

परंपरा लाता है जबकि सत्य अमरता प्रदान करता है ।

आज तक हमारा जनाजा निकला पर सत्य पाकर हम मृत्यु का जनाजा निकलवायेंगे ।

यदि मृत्यु को मारना है तो धर्मशास्त्र अति आवश्यक है । धर्मौषधि से ही मृत्युरूपी दर्द का निदान हो सकता है ।

हम जब-जब यह सोचते हैं कि हम युवान हैं, तब-तब वास्तव में हम पल-पल बूढ़े होते जा रहे होते हैं ।

हमारा यह सोचना गलत है कि 'जीवन लम्बा है, ' क्योंकि मृत्यु प्रतिक्षण हमारी ओर बढ़ती जा रही है ।

धार्मिक वृत्ति के परिणाम- स्वरूप यदि जीवन में अभयता प्रवेश करे तो हम बेधड़क कह सकेंगे कि 'हम अमर हैं ' ।

४५. नयकी विशिष्टता

व्यक्ति सत्य या तथ्य को अगर एक ही नय से नापता है तो उसे मिथ्यात्व कहा जाता है और अगर अनेक नयों से नापता है तो उसे सम्यक्त्व कहा जाता है । सभी 'नय' जब एकत्र होते हैं तब 'प्रमाण' बनता है । जिसकी जैसी प्रकृति होती है उसे वैसी प्रकृतिवाला इन्सान पसंद आता है । सांसारिक जीवन एक मेला है, उसमें सबकी रुचि की दुकानें चलती हैं ।

नयवाद के दो भाग हैं : द्वैत और अद्वैत । द्वैत अर्थात् सभी आत्माएँ अलग हैं और अद्वैत अर्थात् सभी की आत्माएँ समान हैं । नय कुल सात हैं, इनमें चार द्रव्यार्थी हैं और तीन पर्यायार्थी हैं ।

पर्याय मानता है कि सबको एक समान ज्ञान हो सकता है और सभी आत्माएँ मोक्ष पा सकती हैं । द्रव्यार्थी समझता है कि नय की दृष्टि से सभी एक हैं ।

द्रव्य आनंदमय है और पर्याय में सुख-दुःख, धनीपना, गरीबी आदि हैं । द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता । वह पर्याय बदलता है ।

४६. त्याग

ज्यों-ज्यों त्याग में ज्ञान का रंग भरता जाता है, त्यों-त्यों त्याग का रंग अधिक पक्का होता जाता है। त्याग और सादगी में सच्चा आनंद है। हर एक वस्तु समझकर करने से आनंद प्राप्त होता है। 'मैं एक हूँ' ये शब्द ममत्व को, मोह को दूर करने के लिए हैं, दीनता लाने के लिये नहीं।

जिस साधु के पास कुछ नहीं है उसके पास सर्वस्व है, पर जिस संसारी के पास सब कुछ है, वास्तव में उसके पास कुछ भी नहीं है। एक आत्मवादी है, दूसरा भौतिकवादी। यहाँ से जायेंगे तब आत्मा का कमाया हुआ ही साथ में आयेगा। शेष सभी भौतिक वस्तुएँ यहीं छोड़कर जायेंगे। इसलिए जो वस्तु साथ जानेवाली हो, ऐसी ही वस्तु अभी कमाना चाहिए। यही कारण है कि साधु प्रति क्षण ज्ञान की साधना ही करते हैं।

४७. मुक्ति

उत्तम और अमूल्य वस्तु को पाने के लिए कम मूल्यवाली वस्तु को छोड़ना पड़ता है। त्यागी जितना छोड़ते हैं, उससे कई गुना प्राप्त करते हैं। आसक्ति है, इसलिए संसार मीठा लगता है। अगर आसक्ति या ममत्व छूट जाय तो संसार का सही स्वरूप समझ में आ जाता है और समस्त विश्व के प्रति आत्मीयता का अनुभव होता है। आसक्ति में अनंत दुःख है और अनासक्ति में अनंत सुख है। मोक्ष अर्थात् मुक्ति है। इसलिए आसक्ति, भय, विचार, विकल्प, वासना, और कर्म से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।

दो चौबेजी मथुरा से दूर जाना चाहते थे। भांग के नशे में नौका का लंगर छोड़ना ही भूल गये। यद्यपि वे रातभर पतवार चलाते रहे, फिर भी नौका तो वहीं की वहीं खड़ी रही। इसी तरह ममत्व के रस्से को छोड़ेंगे तभी तो मुक्त बनेंगे।

घर में अगर स्वामी भाई भोजन न करे तो वह घर स्वर्ग नहीं, धर्मशाला के समान है।

४८. वासना

इन्द्रियों को जितना अधिक व्यसनों की खुराक दोगे, उतनी ही वे ज्यादा ऊधम मचायेंगी। भव की वासना का त्याग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति। जैसे ज्योति का स्वभाव ऊपर जाने का है वैसा ही स्वभाव आत्मा का है। इन्द्रियों को त्याग, तप और संयम से जीतना चाहिए। भव में, संसार में अनुरक्त होना, आत्मा का स्वभाव नहीं है। आत्मा का स्वभाव तो भव से विमुक्त होना है। इसके लिए भव की वासना को पराजित करना होगा। विषयों के पाप से इन्द्रियाँ आत्मा को रस्सी की तरह बाँध देती हैं, जिससे आत्मा मुक्त नहीं हो सकती। शेर को भी अगर बाँध दिया जाय तो वह गुलाम बन जाता है। उसी प्रकार वासना से, विकारों से, विषयों से, विकल्पों से आत्मा बंध जाती है।

आत्मा को परमात्मा बनाने की इच्छा होते ही जीवनमें परिवर्तन होने लगता है और त्याग, संयम, अपरिग्रह, मैत्री, प्रेम, क्षमा जैसे अनंत गुण आने लगते हैं।

४९. संयम

मन को समता और संयम में बाँधे रखना अत्यंत कठिन है, क्योंकि मन तो पानी के समान है, उसे ऊपर चढ़ाने के लिए कठिन साधना करनी पड़ती है। जब हम पूजा सामायिक या स्वाध्याय करते हैं, तब न सोचने योग्य भी सोचने लगते हैं। क्योंकि आर्त-रौद्रध्यान धर्म करते समय ही आते हैं, इसलिए उस समय मन को धर्म और मोक्ष की ओर मोड़ना चाहिए। प्रभुके वचनो में ही रमण करना चाहिए। श्रवण करते समय एकतान बनकर गुरुमुख से निसृत प्रभु की वाणी की ओर ही ध्यान देना चाहिए। मन के ऊपर विवेक की लगाम लगा कर श्रवण क्रिया में एकाग्र बनना चाहिए।

अगर इन्द्रियों के ऊपर संयम की लगाम न हो तो वे आत्मा को दुर्गति में फेंक देती हैं।

जैसे-जैसे बाहर का सुख बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अंदर का सुख घटता जाता है।

५०. सृजन

एक श्रम से सृजन होता है और दूसरे से विनाश । व्यक्ति के मनमें दो प्रकार के विचार आते हैं । धूल के अनुसार चलनेवाला ऊर्ध्वगामी बनता है, और उसके विरुद्ध चलनेवाला अधोगति में चला जाता है । ज्ञानी हर एक क्रिया कर्मों को खपाने के लिए करता है, जबकि अज्ञानी की प्रत्येक क्रिया बंधन के लिए होती है ।

लंडन में दीनबंधु एण्ड्रूज एक शराबी को समझाने रोज उसके पास जाते थे । शराबी कहता, "मुझे भगवान में श्रद्धा नहीं है ।" तब दीनबंधु कहते, 'भगवान् को तुम में विश्वास है ।" प्रकाश को श्रद्धा है कि वह अंधकार को दूर कर सकेगा, उसी प्रकार ज्ञानी को विश्वास होता है कि शराबी में, और चोर में भी दिव्य आत्मा का निवास है । उसी दिव्य आत्मा को ऊपर उठा सकूँगा ही, आत्मा को परमात्मा बना कर रहूँगा ।

५१. मोहमदिरा

मलिन सकल्प-विकल्प रूपी मदिरा के पात्र द्वारा मोहमदिरा का यथेच्छ पान करके उन्मत्त बने हुए जीव विविध प्रकार की कुचेष्टाएँ करते हुए चारों गतियों में भटकते रहते हैं। किंतु मलिन संकल्प-विकल्पों को छोड़कर तथा रागद्वेष को दूर करके, मोहके वशमें नहीं होते हुए जो सद्दिवेक के योग से संयमित रहते हैं, वे ही चरित्र के द्वारा अन्य लोगों के लिए भी अनुकरणीय बन कर अंत में अक्षय और अविनाशी मोक्षपद को प्राप्त करते हैं ।

जैसे शराब, शराबी, शराब की प्याली और शराब की दुकान- ये चारों परस्पर जुड़े हुए हैं । उसी प्रकार यह संसार मदिरालय जैसा है, जहाँ मोहरूपी शराब को विकल्प-विचारूपी प्याले में भर कर हम पीते ही रहते हैं । 'मेरा अच्छा, तेरा खराब' इस भ्रम के साथ हम संसार में भटकते रहते हैं । शराब पीने के बाद मनुष्य जिस प्रकार विविध चेष्टाएँ करता है, उसी प्रकार भवरूपी नाटक में भी वह अनेक तरह के प्रपंच किया ही करता है । हँसते हुए बाँधे गये कर्म रोते-रोते भी छूटते नहीं हैं । मोहरूपी शराब आत्मा को दुर्गति में ले जाती है ।

५२. श्रुतज्ञान

स्फटिक पत्थर पर अगर धूल जम गई हो तो उसकी पारदर्शिता को जाना नहीं जा सकता । धूल साफ होने के बाद हमारे लिए वह अमूल्य हो जाता है । हमारी आत्मा भी आठ कर्मों के आवरण से आवृत्त है इसीलिए यह संसार में भटक रही है ।

ज्ञान आत्मा का गुण है । जैसे-जैसे ज्ञान प्रकट होता जाता है, आत्मा शुद्ध बनती जाती है । ज्ञानपूर्वक आत्मा का विचार करना चाहिए । ज्ञान स्व और पर - दोनों को ही प्रकाशित करता है ।

श्रुतज्ञान बोलता हुआ होता है और केवलज्ञान मूक होता है । केवल ज्ञान को बतानेवाला भी श्रुतज्ञान होता है । संसार को पार करानेवाला श्रुतज्ञान होता है । आत्मा जब मुक्त हो जाती है, तभी वह वास्तव में सुखी होती है । त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में क्रोध के कारण बाँधे कर्म हल्के होते ही महावीर परमात्मा का वह जीव भगवान् बन जाते हैं । वीर प्रभु के कानों में जब कीलें ठोकी जाती हैं, तब प्रभु सोचते हैं कि 'अज्ञानवश किये हुए कर्म को मुझे ज्ञानदशा में चूपचाप भोगने चाहिए । अंधकार में लगाई हुई गाँठ को मुझे प्रकाश में खोलना चाहिए ।'

५३. श्री-गणेश

व्यवहार में किसी शुभ कार्य के प्रारम्भ में लोग जिनकी वन्दना करते हैं, 'श्री गणेशाय नमः' उन गणेश का उदर बहुत बड़ा है। यह बताता है कि जो गण के स्वामी हैं, समुदाय के नेता हैं, देशनेता हैं, जिनको वडील बनना है, उनका पेट दुनिया की बातों को हजम कर सके उतना विशाल सागर जैसा होना चाहिए।

गणेश की आँखें छोटी हैं, जो बताती हैं कि जो गण का नेता होता है उसकी दृष्टि सूक्ष्म होनी चाहिए। हर एक बात को सूक्ष्म दृष्टि से देखना चाहिए। इससे वस्तु में रहा हुआ रहस्य समझ में आता है। आत्मा और परमात्मा का विचार करने के लिए सूक्ष्म दृष्टि की ही आवश्यकता है।

गणेश के कान बड़े हैं, अर्थात् जो देश का नेता अथवा या कुटुंब का मुखिया हो, उसके कान बड़े होने चाहिए जिससे कि सब की बातों को सुनकर जो योग्य हो, वही वह अपनाये।

गणेश की नाक लंबी है, इसका अर्थ यह हुआ कि उसे चारों ओर सूँघ-सूँघ कर अच्छी वस्तु को अपना लेना चाहिए। बड़े लोग अच्छाई को अपनाते हैं और निकम्मी

बातों को छोड़ देते हैं ।

गणेश बड़े और उनका वाहन छोटा ! चूहा छोटा होता है । इसी तरह बड़े आदमी का सहायक छोटा ही होना चाहिए, जो चारों ओर की छोटी-छोटी बातों का भी ध्यान रखे । दूसरा, बड़े आदमी को छोटे आदमी को भी सम्मान देना चाहिए, स्थान देना चाहिए । छोटे आदमी में भी बहुत से सद्गुण होते हैं, उन्हें अपनाना चाहिए ।

गणेश सद्गुणों के प्रतीक हैं ।

भगवान से केवल प्रकाश की माँग करके अपने मार्ग में आगे बढ़ते ही जाना चाहिए । राज्य का त्याग करने के बाद एक दिन भर्तृहरि जब गुदड़ी सी रहे थे, तब धागा सुई में से निकल गया । रात हो गई थी, इस वजह से वे फिर सुई में धागा डाल न सके । तब लक्ष्मीदेवी ने रेशम की गुदड़ी दी तो भर्तृहरि ने लेने से इन्कार कर दिया । जब देवी ने वरदान माँगने को कहा, तब भर्तृहरि ने सुई में धागा डालने की माँग की ।

५४. पंडित-मरण

मृत्यु के भय से रहित होकर और मृत्यु की तैयारी के साथ अगर कोई मरे तो उसे पंडित-मरण कहते हैं। जीवन में ऐसी प्राप्ति करनी चाहिए कि मृत्यु अमर बन जाय। धन के लिए जिंदगी को बेचना नहीं चाहिए। यह मनुष्य भव विशिष्ट प्राप्ति के लिए मिला है। वह धायमाता के समान है। धायमाता बालक को खिलाती-पिलाती है, मगर अंतर से विरक्त रहती है, क्योंकि बालक पराया है।

धनदौलत, बंगला, कुटुंब-परिवार सभी यहीं छोड़कर जाना है। दूसरा जन्म लेना हमारे हाथ की बात नहीं है। लेकिन जाना हमारे हाथ में है। किसीके शाप से या आशीर्वाद से हमारा जीवन न तो छोटा हो सकता है न लंबा। आयुष्य जितना बाँधा है उतना भोगना ही पड़ता है।

मृत्यु के समय पंडित-मरणवाले व्यक्ति के सुख और शांति दूर नहीं होते हैं। क्योंकि उन्होंने तो पाँचों इन्द्रियों को अपने काबू में रखकर प्राप्त साधनों का उपयोग लोक-कल्याण के कार्यों में किया है। पंडित-मरण होने के बाद जनम-मरण के फेरे मिट जाते हैं।

५५. संत-समागम

मनुष्य की प्रकृति अनादिकाल से संसार के अनुकूल हो गयी है। ठंड के दिनों में जितने समय के लिए गरम कपड़े पहनते हैं उतने समय के लिए ही ठंड दूर रहती है, पर जैसे ही गरम कपड़े उतारते हैं कि ठंड लगने लगती है। उसी प्रकार श्रवण करते समय या स्वाध्याय के समय तो शुभ विचार आते हैं, लेकिन जैसे ही संसार की प्रवृत्तियों में लगे कि शुभ विचार दूर चले जाते हैं। इसलिए जीवन के अंतिम क्षणों तक प्रभु की वाणी को सुननी चाहिए।

गरमी के दिनों में सरोवर के किनारे शीतलता मिलती है। उसी प्रकार संतों के सान्निध्य में शांति और सुख शाश्वत रूप से मिलते हैं।

अगर कोई हमें गाली दे, तो भी हमें शांत बने रहना चाहिए, जिससे सामनेवाला थक कर चला जाय। एक समय एक धर्मगुरु ने सोचा कि लोग मुझे नहीं चाहते और उस संसारी पैरिक्वुलस को चाहते हैं, ऐसा क्यों ?

इसका कारण यह था कि पैरिक्वुलस अपने हृदय के जो भी विचार लिखता वे लोगों को बहुत ही पसंद आते थे।

एक दिन वह धर्मगुरु पैरिक्वुलस के

साथ झगड़ने गया । शाम तक वह उसे सुनाता रहा । किंतु पैरिक्कुलस एक भी शब्द नहीं बोला । इससे धर्मगुरु थक गया । पैरिक्कुलस जो लिख रहा था, वही लिखता रहा । अगर हम में कोई खराबी नहीं है तो बुरे व्यक्ति द्वारा की निंदा क्यों सुननी चाहिए ?

जहाँ लकड़ियाँ या तिनके होते हैं, वहीं आग में वृद्धि होती है । पैरिक्कुलस ने उसे ठंडा पानी पिलाया और अपने पुत्र को दीपक लेकर उसे उसके मुकाम पर छोड़ने जाने को कहा । लेकिन धर्मगुरुने अब वहाँ से जाने से ही इन्कार कर दिया । धर्मगुरु ने पूछा, “आपने ऐसा कौनसा तत्त्व पा लिया है कि मेरी गालियाँ भी आप तीन घंटों से इतनी शांति से सुन रहे हैं ?” उसका उत्तर सुनकर धर्मगुरु ने कहा, “मुझे अपनी आत्मा का ज्ञान हो गया है ।”

पारस पत्थर का स्पर्श होते ही लोहा सुवर्ण बन जाता है, उस प्रकार संतों के समागम से हमारा जीवन भी सुवर्णमय बन जाता है

मनन, चिंतन ध्यान और मौन में रहने वाला ही सच्चा मुनि है । निज स्वभाव में रममाण रहनेवाला ही मुनि है ।

५६. निर्भयता

अविवेकी मानते हैं कि जगत में स्वयं का माँस सबसे मूल्यवान् वस्तु है और दूसरों का माँस सब से सस्ती वस्तु । जगत् में जब तक हमें दूसरे के जीवन की कोई कीमत मालूम नहीं होती तब तक हमें अहिंसा का मूल्य भी समझ में नहीं आता है । अगर हमें किसी का जीवन बलिदान देकर जीना पड़े तो उससे मौत कहीं अधिक अच्छी है । दूसरों के प्राण लेने में हमें बहुत ही दुःख होना चाहिए, क्योंकि हमें भव और वैर से मुक्त होना है ।

जो व्यक्ति हिंसक है, उसी को भय होता है । अहिंसक तो निर्भय होता है । इन्सान स्वयं निर्बल नहीं है, उसकी वृत्तियाँ उसे निर्बल बनाती हैं । अपने अपने में दोष हों तो ही मनुष्य निर्बल होता है । दोषमुक्त बनो । यदि इन्द्रियों पर काबू रखोगे तो तुम निर्भय हो जाओगे । 'पर' की आत्मा को अपनी आत्मा के समान ही मानना चाहिए ।

५७. पसंद

हमें निगोद में जाना है या सिद्ध अवस्था को प्राप्त करना है ?

प्रभु ने हमें वह मार्ग बताया है ।

हम प्रवासी हैं, निवासी नहीं । जिस तरह निगोद अवस्था से विकास करते-करते आज हम मनुष्य बने हैं, उसी प्रकार विकास करते-करते हमें सिद्ध भी बनना है ।

“हे चेतन, तूने आधा रास्ता तो तय कर लिया है । आधा रास्ता अब और तय कर ले तो अनंत ज्ञान का स्वामी हो सकता है ।

“चेतन !, तू पस्ती का व्यापारी नहीं है । कषाय-विषय पस्ती जैसे हैं । तू तो रत्नों का मालिक है, सर्व सद्गुणों का स्वामी है ।”

काम, क्रोध, मान, लोभ माया, इत्यादि पस्ती के समान हैं; त्याग, समता, संतोष, (नम्रता) सरलता, आदि रत्नों के समान हैं ।

५८. साधन और साध्य

जिसे विभूति बनना है, उसे प्रथम आत्मा की अनुभूति करनी होगी । जिससे शरीर चलता है, उस आत्मा का ही विचार करना होगा, जो आत्म तत्त्व है, उसे मुक्त करना है; क्योंकि यह आत्मा कर्म के बंधनों में बँधकर चार गतियों में भटक रही है; जन्म, जरा, मरण के दुःखों को भोग रहा है ।

जब तक शरीर की संभाल रखनेवाली (आत्मा) है, तब तक ही स्नेहीजन हमारी संभाल रखते हैं । जो दृष्टिगोचर है, उसके नहीं, लेकिन जो दृष्टिगोचर नहीं है, उसी के सब मित्र हैं । जगत् में जो केन्द्रस्थ है, वह दिखाई नहीं पड़ता है और जो शरीर दिखाई पड़ता है, उसे रखनेवाली आत्मा ही है ।

शरीर तो आत्मा का मंदिर है, इसलिए शरीर को साधन और आत्मा को साध्य मानना चाहिए ।

आत्मा का स्वभाव तो सद्गुणप्रधान है, जबकि सभी अज्ञारह दोष तो शरीर के हैं ।

५९. प्रार्थना

एक समय जब भयंकर दुष्काल चल रहा था, तब गाँव के लोग प्रार्थना करने के लिए एकत्र हुए । एक वणिक प्रार्थना में सम्मिलित नहीं हुआ, इसलिए सब लोग उसे प्रार्थना करने के लिए बुलाने लगे । लेकिन उस वणिक ने प्रार्थना में जाना स्वीकार नहीं किया; क्योंकि गाँव के लोगों का धर्म सिर्फ दिखावे का था, हृदय का नहीं । झूठे लोगों की प्रार्थना भगवान् नहीं सुनता है ।

गाँव के लोगों ने बहुत प्रार्थना की, फिर भी वर्षा जरा भी नहीं हुई । दुष्काल फैलता ही गया । भगवान् ने प्रार्थना नहीं सुनी । बाद में वह वणिक हाथ में तराजू लिये भगवान् से प्रार्थना करने लगा : "यदि इस तराजू को मैंने देव माना हो, इस तराजू से किसी को दुःख न पहुँचाया हो और इससे लोगों के दुःख दूर किये हों तो वर्षा होगी और दुष्काल चला जायेगा ।" प्रार्थना होते ही मूसलाधार वर्षा हुई ।

धर्म को हृदय में उतारना चाहिए । धर्म दिखावा करने के लिये नहीं है । धर्ममय जीवन जीनेवाले की प्रार्थना में सात्त्विकता होती है और इससे प्रकृति के तत्त्वों पर भी वे विजय प्राप्त कर सकते हैं ।

६०. व्रतपालन

व्रत लेकर पालन न करें तो उसकी कोई कीमत नहीं है। व्रत लेने के विषय में तो हम बड़े बहादुर हैं, लेकिन उसके पालन में बहुत निर्बल हैं। एक भी व्रत का पालन अगर ठीक से करेंगे तो उसके पीछे-पीछे कई व्रत खिंचकर आयेंगे।

एक चोरने असत्य न बोलनेका व्रत लिया। चोरी करने जाते समय सिपाही ने उसे रोका और पूछा तो उसने उसे सब सत्य कह दिया। बाद में उसने चोरी की और पकड़ा गया तो राजा के सामने भी उसने सत्य कहा। राजाने कहा, “तू चोर है तो चोर के रूप में ही अपने आपका परिचय क्यों देता है ?”

चोर ने उत्तर दिया, “चोरी करना मेरा धंधा है और ‘असत्य न बोलना’ यह मेरी प्रतिज्ञा है।’ सत्य बोलने के इस व्रत के पालन से राजाने उसे सेनापति पद पर रख लिया। एक ही व्रत का अगर संपूर्ण रूप से पालन किया जाय तो जीवन उज्ज्वल हो जाता है।

व्रत लें, लेकिन भावना न हो तो व्रत व्यर्थ बन जाता है। दियासलाई जलाने पर बीच में अगर दीवार न हो तो वह हवा से बुझ जाती है। दीपक के आसपास जैसे चीमनी रखनी पड़ती है, वैसे ही भावना व्रतों की चीमनी है।

६१. सौम्य डाँट

राजा श्रेणिक जब शालिभद्र के घर गये, तब शालिभद्र को पता चला कि मेरे ऊपर भी कोई स्वामी है । आज तक वे मानते थे कि, 'मेरे सिर पर कोई स्वामी नहीं है ।' उन्होंने निश्चय किया कि, मुझे अब कोई स्वामी नहीं चाहिए और वे जाकर प्रभु के चरणों में बैठ गये ।

शालिभद्र की ऋद्धि-सिद्धि को देखकर श्रेणिक को ईर्ष्या नहीं होतीथी, क्योंकि उन्होंने प्रभु की वाणी सुनी थी कि जो कुछ मिलता है वह पुण्य से ही मिलता है । सत्ता का सुख मुझे मिला है, तो भोग का सुख शालिभद्र को ।

चंदनबाला और मृगावती प्रभु वीर की वाणी सुनने गये । चंदनबाला समय पर उपाश्रय वापिस आ गई ! मृगावती को आने में देर हो गई । तब चंदनबाला ने कहा, "कुलीन व्यक्ति को इतनी देर से आना शोभा नहीं देता ।"

बस, अपनी इसी भूल के कारण मृगावती की आँखों से पश्चात्ताप के आँसू बहने लगे और पश्चात्ताप के उसी निर्मल जल में नहाकर मृगावती को केवलज्ञान प्राप्त हुआ । इस बात का ज्ञान जब गुरुणी चंदनबाला को हुआ तो वे मन ही मन पश्चात्ताप करने लगी

कि मैंने केवली की अशातना की । साथ ही उन्होंने मृगावती से क्षमा भी माँगी । अपने द्वारा दी हुई सौम्य डाँट को गलत समझकर पश्चात्ताप के नीर कलकल करते हुए बहे और चंदनबाला ने भी केवलज्ञान प्राप्त किया ।

पश्चात्ताप की पराकाष्ठा परमपद की प्राप्ति कराती है । प्रायश्चित्त करके ही दृढ़ प्रहारी जैसे भयंकर चोर तथा अर्जुन माली जैसे नराधम राक्षस की पापी आत्मा ने भी उसी भव में मुक्ति प्राप्त कर ली ।

दर्शन से श्रद्धा, ज्ञान से जानकारी और चारित्र से उसका आनंद लिया जाता है । चारित्र द्वारा जो कुछ प्राप्त किया जाता है वही साथ में आता है, दूसरा कुछ भी नहीं आता । चारित्र अर्थात् संसार का त्याग करना इतना ही नहीं, वरन् उसमें अशुभ क्रियाओं का त्याग और शुभ क्रियाओं पर राग करना होता है । उसमें अर्थ और काम सम्बन्धी बातों का त्याग करना होता है । शादी के समय भी वासक्षेप डाला जरूर जाता है, लेकिन उस वासक्षेप में “धर्म हमारे जीवन में टिका रहे” यही आशा रहती है ।

६२. चौदह स्वप्न और उनका फल

- (१) चार दंतशूलवाला हाथी - अर्थात् चार प्रकार के धर्म - दान, शील, तप, भाव युक्त बालक होगा ।
- (२) वृषभ- धर्मरूपी बीज बोकर खेती करेगा ।
- (३) शेर- कामरूपी हाथी को मारने में समर्थ होगा ।
- (४) लक्ष्मी- संपत्ति का वर्षीदान करेगा ।
- (५) फूल की माला- तीनों भुवनो में फूल की तरह सम्मान पायेगा ।
- (६) चंद्र- पुत्र की कांति चंद्र के समान होगी ।
- (७) सूर्य- भामंडल से सुशोभित होगा ।
- (८) ध्वज- तीनों भुवन में धर्मध्वजा फहरानेवाला होगा ।
- (९) कलश-धर्मकलश चारों ओर चढ़ायेगा ।
- (१०) सरोवर- देव उसकी पूजा करेंगे ।
- (११) रत्नाकर- केवलज्ञानी होगा ।
- (१२) विमान- वैमानिक देव पूजा करेंगे ।
- (१३) रत्नराशी-अनंत गुणों के स्वामी बनेंगे ।
- (१४) अग्नि की ज्वाला-तीनों लोक को शुद्ध पवित्र बनायेगा ।

६३. त्याज्य ज्ञान

मरते समय जौहरी कह गया था, "बेटे, हो सके, तब तक किसीके सामने हाथ मत फैलाना । जब बहुत दुःख का समय आ जाय तब तिजोरी में पड़े हुए हीरों को बेच देना ।" तदनुसार जब दुःख का अतिरेक हो गया, तब बेटा पिता के मित्र के घर हीरों को बेचने के लिए गया । मित्र ने 'ना' कहकर और कुछ पैसे देकर उसे वापस घर भेज दिया । बाद में नौकरी में रख लिया । आगे जाकर वह लड़का उस धंधे में बहुत प्रवीण हो गया ।

एक बार उसे हीरों को बेचने का विचार आया । तिजोरी में से उसने उन हीरों को निकाला । अब तक वह हीरों की परीक्षा में अत्यंत प्रवीण हो गया था, इसलिए हीरों को देखते ही उसे पता चल गया कि वे तो केवल काँच के टुकड़े थे । प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए पिता ने ऐसा किया था । इसी प्रकार हमारे गुरुजन भी शुद्ध-अशुद्ध का विवेक देते हैं । सच और झूठ, त्याग करने योग्य और ग्रहण करने योग्य-क्या है, इसकी समझ देते हैं ।

छोड़ने से ज्यादा, छोड़ने जैसा क्या है इसका ज्ञान अधिक आवश्यक है ।

६४. योग्यता

जब हम किसी को उपदेश देने के लिए जायें, तब पहले हमारी स्वयं की भावना शुभ होनी चाहिए । शुभ भावना से औरों पर उपदेश का अच्छा असर होता है ।

गौतमस्वामी जब अष्टापद पर्वत से नीचे आये तब उन्होंने कई तापसों को अपनी अक्षयलब्धि द्वारा खीर का पारणा कराया । इस खीर को खाने के बाद पाँच सौ तापसों को केवलज्ञान हो गया । कारण, गौतमस्वामी शुभ भाव से औरों के पास जाते थे ।

दूसरों को सुधारना हो तो उनके पास जाकर बोध देना चाहिए । दूर से दिये गये बोध का कोई असर नहीं होता । ज्ञान से, समझ से और विचारों की लेन-देन से मनुष्य को बोध प्राप्त होता है । जगत में समझदार लोग असंभव में से भी संभावित को प्राप्त कर लेते हैं ।

भगवान महावीर ने कहा है, “आप लोगों में और मुझ में अन्तर यही है कि मेरे अंदर जो था, उसका मैंने ठीक-ठीक उपयोग किया । आप लोग उसका सही उपयोग नहीं करते हैं । हम जैसा चाहें वैसा अवश्य बन सकते हैं, केवल मन, वचन, और काया को योग्य बनाना पड़ता है ।”

६५. समकित दृष्टि

शुद्ध देव, गुरु और धर्म को भूलकर, आत्मा को भूलकर जो केवल जड़ पदार्थ का विचार करे, वह मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यादृष्टि जीव की धर्म करने की वृत्ति केवल जड़ पदार्थों की प्राप्ति के लिए ही होती है। कई आत्माएँ समकित प्राप्त करके उसे खो देती हैं और जड़ पदार्थों में खो जाती हैं।

संध्या के समय जैसे थोड़ा अंधकार होता है उस प्रकार सम्यक्त्व के बाद मिथ्यात्व आये तो वह अंधकार के बराबर है। समकित जीवन में आकर कई बार चला जाता है। पुद्गल में से पुद्गल बुद्धि चली जाय और आत्म-बुद्धि प्रकट होकर चैतन्य का प्रकाश प्राप्त हो जाय तो उसे चौथा गुणस्थान कहते हैं। समकितधारी आत्मा दुःख से कभी घबराती नहीं है। जब दुःख पड़ता है, तब वह मन में सोचती है कि मैंने दुःख के बीज बोये हैं इसलिए मैं दुःख भोगता हूँ। इस तरह प्राप्त दुःखों को वह समतापूर्वक भोगता है, आर्त्तध्यान करके नये दुःखों को जन्म नहीं देता।

सद्गुण आ जाय और इलकाब मिले तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन सद्गुण न आये और इलकाब मिले तो वह गलत है। समकित

जीव को सद्गुणों को देखकर आनंद होता है और वह उन्हें प्राप्त करने के लिए उधर दौड़ पड़ता है ।

समकृती मनुष्य अपने अवगुणों को सबके सामने खोलकर रखता है और सद्गुणों को छुपा देता है । इसके विपरीत दूसरों के अवगुणों को छिपाकर उनके सद्गुणों को प्रकाश में लाता है, स्वयं सद्गुणों को जीवन में उतारता है और दुर्गुणों को दूर फेंक देता है । सम्यक्त्वी आत्मा सुख नहीं, दुःख ही माँगती है ।

गाड़ी जब ऊपर चढ़ती है, तब दुर्घटना नहीं होती है । उतरते समय ही वह दुर्घटना करती है । दुःख में पतन का भय नहीं, सुख में ही पतन का भय रहता है ।

माँग कर पैसे लेना वह 'पैसा' ही है, परन्तु हृदय के भाव से जो पैसा दिया जाता है वह 'दान' बन जाता है । दान एक सुवास है और सुवास हृदय में से आती है । साधु का जीवन सुवास से भरा होता है । वह परोपकार करता है । पैसे तो हमें छोड़कर जानेवाले हैं । पैसे लेने के लिए नहीं, देने के लिए होते हैं ।

६६. खेती

जैसे शरीर खुराक से टिकता है, वैसे ही आत्मा धर्म से टिकती है । दुनिया में करने जैसा क्या है और छोड़ने योग्य क्या है इसकी समझ धर्म से ही आती है । मनुष्य के अंतर रूपी धरती बिना जोते ही पड़ी है, उसमें धर्मरूपी मोती की खेती करनी है । वर्षा के आरंभ में खेती करें तो वर्षाकाल पूर्ण होते होते हमारा मन हराभरा खेत बन जायगा । हमारे अंतर को कूड़ा-कचरा डालने का स्थान नहीं, बल्कि सुवासित पुष्प जैसा बनाना है । महापुरुषों के ग्रंथ मोती के समान प्रेरणा दे जाते हैं । भावी समाज हमारी खेती पर ही खड़ा होनेवाला है ।

किसान पहले जमीन को जोतकर नरम बनाता है, उसी तरह हमें आत्मा को मानवता से, करुणा से, दया से, वात्सल्य से कोमल बनाना है । हमें मनुष्य-मनुष्य के बीच सहायक बनना है, दुश्मन नहीं । चींटी, मधुमक्खी, दीमक आदि जंतु होते हुए भी एक दूसरे के सहायक बनते हैं ।

६७. भावना

भावना भवतारिणी है । जहाँ भावना है वहाँ भव्यता और दिव्यता है ।

शालिभद्र ने पूर्वजन्म में असीम भाव-पूर्वक साधु को खीर वहोराई थी, इसलिए दूसरे भव में उसे असीम ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई ।

कुमारपाल ने हृदय की निर्मल भावना से अपने पांच कौड़ी के फूल प्रभु के चरणों में चढ़ाये परिणाम-स्वरूप अठारह देशों के राजा बने ।

अंतर के उल्लास सहित करने से कोई भी काम हलका हो जाता है । कार्य अपनी भावना पूरी करने के लिए करना है, बदले के लिए नहीं । कार्य के पीछे संगीत चाहिए । माता अपने पुत्र से कभी प्रमाणपत्र नहीं माँगती । तुम्हारा अपना कोई न हो फिर भी अगर जीवन में भावना होगी, तो जगत तुम्हारा बन जायेगा ।

दान, शील, तप, भाव -- इन चार प्रकार के धर्मों से आत्मा का ज्ञान होगा । भगवान् महावीर के जीव को नयसार के भव में प्रथम भाव दान का हुआ था कि- 'किसी को भोजन कराकर मैं भोजन करूँ ।' इस प्रकार अतिथि सत्कार की भावना उनके मन में जागृत हुई

थी । दान मोक्ष का बीज है । शुद्ध भावना से सुपात्र को दान देने से आत्मा क्रमशः आगे बढ़ती हुई निर्वाण प्राप्त करती है ।

राह भूले हुए मुनियों को नयसार ने मार्ग बताया, तब गुरु ने उसे भव-अटवी में से बाहर निकलने का मार्ग दिखाया और नवकार मंत्र दिया । धन का दान करने से परिग्रह से मुक्त हो सकते हैं, उससे मूर्च्छा का त्याग होता है ।

‘इस जीवन का हेतु क्या है ?’ ऐसा विचार केवल मनुष्य को ही आता है, तिर्यच ऐसे विचार नहीं करते । उसे आत्मा का विचार नहीं आता । मनुष्य को खाना-पीना मिल जाय तो भी आत्मा का विचार आता है । वह जानता है, कि यहाँ जो प्राप्त है, उसे छोड़ना है । मनोरथ कभी भी पूरे नहीं होते, इसलिए जो प्राप्त है, उसे पहले से छोड़ देने में ही सुख है ।

६८. पुण्याई

सेना को 'श्रेणी' में व्यवस्थित करने के कारण बिंबिसार का नाम श्रेणिक पड़ा। पर उस महान् सम्राट श्रेणिक को, मगध के मालिक को, उसका पुत्र चाबुक से मारता है, तब चेलणा कहती है, "स्वामी ! आपकी यह दशा !"

तब सम्यक्त्व-प्राप्त श्रेणिक कहते हैं, "पिछले जन्म में मैंने उसे दुःखी किया होगा, इसीलिए इस जन्म में वह मुझे मार रहा है। इसलिए उस पुत्र पर करुणा करना चाहिए।"

परलोक के पुण्य से धन, संपत्ति, और बुद्धिमत्ता आती है। जहाँ पुण्य है, वहाँ लक्ष्मी, समृद्धि, सुविधा और वफादार मित्र मिलते हैं। जहाँ पुण्य नहीं है, वहाँ चाहने पर भी तप त्याग, संयम आदि हो नहीं सकते। नारकी जीव पारावार यातना के समय लेशमात्र भी अन्य विचार नहीं कर सकते। पशु अज्ञान दशा में डूबे हुए हैं। ज्ञान के विकास में आगे बढ़नेवाला केवल मनुष्य ही है। इसलिए उसे मनुष्यजन्म को उत्तमोत्तम बनाना चाहिए। उसकी आत्मा को पूर्णता की ओर प्रगति करनी चाहिए। अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद, अनंत वीर्य आत्मा के अंदर विद्यमान हैं। इनको विकसित करके

पूर्णता को प्राप्त करने के लिए यदि कोई समर्थ है, तो मनुष्य ही है ।

पुण्य का प्रभाव आत्मकल्याण करवाना है और जगत में कीर्ति प्रसारित करना है । हम असंख्य केवली भगवंतों को याद नहीं करते हैं, लेकिन चौबीस तीर्थकरों को हमेशा याद करते हैं, क्योंकि उन्होंने जबरदस्त पुण्यनामकर्म बाँधे होते हैं, अतः उनके अतिशय स्वयं प्रकाशित हो उठते हैं । जब तक मोक्ष प्राप्ति न हो, तब तक पुण्यकर्मोंकी बहुत आवश्यकता रहती है ।

मोक्ष फल है और पुण्य फूल है । फल के आते ही फूल अपने आप झड़ जाते हैं ।

जो दिन अपने हाथ में हैं, उनका सदुपयोग कर लेना चाहिए । दुःख का उदय अभी आ जाय, यही अच्छा है । कर्म राजा का कर्ज अभी ही जितना अदा कर दिया जाय, उतना उत्तम है । संसार में सुख मानने के बजाय मोक्ष में सुख मानने से मोक्ष प्राप्तिकी ओर प्रयाण होता है । विपत्ति को संपत्ति मानो, दुःख को सुख मानो ।

६९. समर्पण

किसी समय दो भाइयों ने अपने खेत का बँटवारा किया। बड़े भाई को एक भी पुत्र न था। छोटे भाई को चार पुत्र थे। बड़े भाई के मन में दया का वास था। उसने सोचा, “मेरे कोई संतान नहीं है, छोटे के चार हैं। क्यों न थोड़ा अनाज उसके खेत में डाल दूँ ?” छोटे भाई के मन में विचार आया ‘मेरे तो चार पुत्र हैं, चारों कमायेंगे। लेकिन बड़े भाई के लिए उनकी वृद्धावस्था में कमानेवाला कोई नहीं है, इसलिए दस गठरियाँ उनके खेत में डाल दूँ।’ बाद में दोनों भाईयोंने साथ में बैठकर इन दस गठरियों का खुलासा किया। इससे दोनों के बीच प्रेम बहुत बढ़ गया और बाँटे हुए खेत फिर से एक हो गये।

त्याग और समर्पण से ही संसार में स्वर्ग का सुख मिलता है। जितना त्याग अधिक, उतना ही संसार अधिक मधुर बनता है।

नेमिनाथ भगवान ने उच्च मार्ग अपनाया, उससे राजीमती भी उनके मार्ग पर चली। प्रेम के अन्दर ऐसा गुण है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की खातिर अपने स्वभाव को बदल देता है। प्रेम की उत्कृष्टता का प्रमाण यही है कि राजीमती के मन में नेमिनाथ

पर अत्यंत प्रेम था, इसलिए संसार का त्याग कर उसने आत्मसाधना का मार्ग स्वीकार कर लिया ।

वासनावृत्तियाँ नष्ट हो जाएँ उसका नाम ही है सच्चा प्रेम । प्रेम आत्म-स्वरूप देखता है । प्रेम शुद्ध की ओर हो तभी वह आत्मकल्याण की ओर बढ़ता है, हमारा मन ममता से मुक्त हो जाता है । ममता का रंग उतर जाय तभी आत्मा बोझहीन बनती है । कर्म के बोझ को कम करने से आनंद का अनुभव होता है ।

प्रेम के अंदर त्याग रहा हुआ है । राजीमती ने वैभव का त्याग किया और भरपूर युवावस्था में भगवान नेमिनाथ की राह पर चल पड़ी । आत्मसमर्पण में सच्चा त्याग है । प्रेम आत्मसमर्पण ही है । उसमें बदले की आकांक्षा होती ही नहीं है ।

७०. पारसमणि

मन को काबू में करने में ही मनुष्य की महत्ता है । भगवान महावीर महाभयंकर वन में आकर तीव्र साधना शुरू करते हैं । मनुष्य को जीवन में प्राप्त सद्गुणों का कसौटी पर कसना चाहिए । भगवान भी अपने को कसौटी पर कसते हैं । वहाँ एक क्रोधी सर्प आता है और विष से भरी हुई अपनी दृष्टि प्रभु के ऊपर स्थिर करता है । वह विषदृष्टि था, पर भगवान उसके जीवन से ही जहर को निकाल देते हैं ।

जीवन का जहर उतारना अत्यंत कठिन होता है ।

भगवान परम प्रकाश मान थे, वे परम तेजोमय थे इसलिए उन पर उसके क्रोध का कोई असर नहीं हुआ । भगवान के चरणों पर विषाक्त दंश देकर सर्प दूर हट गया, फिर भी भगवान की काया तो प्रसन्नता से हँसती ही रही । सर्प के अज्ञान पर भगवान की करुणा बरसने लगी । भगवान के चरण में से रक्त के बदले दूध की धारा बही इसे देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ । बालक के प्रति माता का प्रेम ही उसके रक्त को दूध बनाता है । भगवान तो समस्त जगत के माता-पिता के समान थे, उनके अंतर में प्रत्येक जीव को तारने के लिए अपार करुणा भरी थी, फिर

उनका रक्त दूध में परिवर्तित क्यों न हो ?

भगवान ने मधुर वाणी में कहा,
“चंडकौशिक ! तू अब समझ, चेतन ! अब
समझ !”

चिंतन, मनन और ध्यान से नेःसृत शब्द
सबकुछ बदल सकते हैं ।

भगवान की वाणी सर्प के हृदय में
सीधी उतर गई । उसके भाव परिवर्तित हो
गये और जातिस्मरण ज्ञान पैदा होते ही वह
अपना मस्तक भगवान् के चरणों में नवा कर
पड़ा रहा । आखिर इस पश्चात्ताप तथा
सहनशीलता के कारण उसे स्वर्ग प्राप्त हुआ ।

‘योग’ मन की तालीम है । वचन और
काया को चलाने वाला मन है । मन की भाप
के द्वारा ही जीवन का एंजिन चलता है ।
अस्थिर मन सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता ।

मनुष्य का मन जब परमात्मा में एकाग्र
हो जाता है, तब पापों का पुंज भी थोड़े ही
समय में नष्ट हो जाता है । योग पाप का नाश
करता है । योग द्वारा आत्मध्यान से आत्मा में
प्रकट हुई अग्नि सभी कर्मों को जला डालती
है । योग से वर्तमान जीवन को भी परिवर्तित
कर दिया जाता है । उससे आधि-व्याधि दूर
हो जाती है । योग पारसमणि है ।

७१. काँटा

दर्शन अर्थात् तत्त्व के प्रति रुचि । रुचि अर्थात् अंतर का उल्लास, अनुराग । जिनेश्वर भगवान राग-द्वेष से परे हैं । मनुष्य संसार में बैठा है । चाहे वह कितना ही तटस्थ रहने का प्रयत्न करे फिर भी उसके अंतर में थोड़ा तो राग-द्वेष का अंश रहेगा ही । जिनेश्वरोक्त तत्त्वों में राग-द्वेष नहीं होते । उदाहरणार्थ गौतम स्वामी का ही प्रसंग लें ।

आनंद श्रावक को प्राप्त अवधिज्ञान के विषय में गौतम स्वामी को शंका होती है । भगवान के पास आते हैं । भगवान जाहिर में गौतम स्वामी से कहते हैं, "गौतम ! आनंद की क्षमा माँग के आ । तेरी शंका व्यर्थ है ।" काँटे का स्वभाव अर्थात् वीतराग का स्वभाव । काँटा सभी को समान मानता है । उसके लिए कोई अपना नहीं, कोई पराया नहीं ।

जिनेश्वर भगवंत के वचन पर रुचि होना ही श्रद्धा है । श्रद्धा से डर चला जाता है ।

ज्ञान होना यह अच्छी बात है, लेकिन उसके प्रति श्रद्धा होना यह अधिक अच्छी बात है । श्रद्धा होने से हमें कार्य करने के लिए बल मिलता है । रुचि का आना अर्थात् कार्य में गति का आना । श्रद्धा की निशानी ही यह है कि उससे कार्य में गति आती है ।

उदाहरणार्थ कोई व्यापारी हररोज ग्यारह बजे खाना खाता हो, लेकिन कभी ज्यादा ग्राहकों के आ जाने से वह खाना भी भूल जाता है ।

रुचि सत्य को स्वीकार करती है और असत्य को दूर करती है ।

जो लोग महान बननेवाले होते हैं, उनमें बचपन से ही नम्रता, विनय, विवेक, समता और संतोष के गुण होते हैं । अच्छे स्वभाव से, अच्छी आदतों से, अच्छे वर्तन से मनुष्य महान बनता है ।

कुम्हार घड़े को ऊपर से ठोकता है, मगर एक हाथ अंदर रखता है ताकि घड़े में अंदर खड्डा न हो जाए । इसी प्रकार विद्यादान करनेवाले गुरु विद्यार्थी को ऊपर से घड़ते हैं साथ ही अंदर से हाथ रखकर विद्यार्थी को आंतरिक रूप से होशियार, सबल और सत्त्वशील बनाते हैं । इस रीति से तैयार होनेवाले व्यक्ति भविष्यको उज्वल बनाते हैं, महान् बनते हैं ।

७२. परमाणु

एक राजकुमार की इच्छा दीक्षा लेने की थी, लेकिन उसके माता-पिता की इच्छा उसकी शादी करने की थी । उसके साथ ब्याह करनेवाली कन्याएँ भी महासतियाँ थीं । वे राजकुमार से कहती हैं कि “हे राजकुमार ! अगर आपको संयम लेने की भावना है तो जरूर लेना, लेकिन एक बार हमारा पाणिग्रहण करो, जिससे हम भी इतनी सद्भाग्यशाली बनें और कह सके कि हमारे पति देव महायोगी थे ।”

राजकुमार शादी के लिए तैयार हुआ, किन्तु हस्तमिलाप के समय राजकुमार सोचने लगा कि “आभूषण भाररूप होते हैं, भोग रोगों को लानेवाले हैं और संसार काया का क्लेश है ।” यह बात बताती है कि उत्तम पुरुषों के भाव-परमाणु भी उत्तम होते हैं ।

राजकुमारने उसी समय संयम लेने का निश्चय किया । उनके साथ आठों कन्याओंने भी संयम लेने का निश्चय किया । इस निश्चय के फलस्वरूप वे आठों कन्याएँ केवली बन गईं ।

७३. नमन

सूर्य कहता है, 'मैंने अंधकार को देखा ही नहीं है।' कारण कि सूर्य का अस्तित्व ही प्रकाशमय है। हमारे अंदर जब ज्ञान-दशा प्रगट होगी तब हमारे अंदर वैरभाव नहीं रहेगा। आंतरिक शत्रुओं को जो जीत ले उसका नाम महावीर। भगवान महावीर योगियों के आधार हैं। उनको योगी नमन करते हैं। घड़ा अगर पानी से भर जाना चाहता है तो उसे झुकना पड़ेगा। उसी प्रकार जो जीवनघट में अमृत भरना चाहता है, उसे भगवान को नमन अवश्य करना होगा। इसी तरह जिन्हें ज्ञान प्राप्त करना है, उन्हें सर्वप्रथम अपने हृदय को कोमल बनाना होगा। मिट्टी को रौंदने से उसमें से सुंदर आकार बना सकते हैं, उसी प्रकार ज्ञानीजन भी हमें नमन की तालीम देकर हमारे जीवन को सुंदर बनाते हैं। नदी के किनारे पर रहे हुए पेड़ भी बाढ़ के पानी को नमन करके अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। लेकिन जो अक्कड़ पेड़ नमते नहीं हैं वे उखड़ जाते हैं। नमन करने से आत्मा नम्र-विनम्र बनती है। और इस प्रकार नम्र या लघु बनकर ही वह महान् बनती है। वह नमन के रहस्यरूप प्रभुता को पा लेती है- 'लघुता में प्रभुताई है।'

७४. स्वानुभव

द्रोणाचार्य सभी शिष्यों को पढ़ा रहे थे ।
उन्होंने पाठ दिया— “आत्मा की साधना के
लिए क्रोध मत करना, क्षमा करना”—

‘क्रोधं मा कुरु, क्षमां कुरु ।’

यह पाठ सबने तो सीख लिया, किंतु
युधिष्ठिर को यह पाठ नहीं हुआ । गुरुजी ने
पूछा, “अभी तक पाठ क्यों याद नहीं हुआ ?”
ऐसा कहकर उन्होंने युधिष्ठिर को चाँटा जड़
दिया, फिर भी युधिष्ठिर को क्रोध नहीं आया ।
समता बनी रही । तब उन्होंने कहा, “गुरुदेव !
अब मुझे पाठ याद हो गया है दूसरे सभी
शिष्य युधिष्ठिर का मजाक उड़ाने लगे,
लेकिन उन्होंने सबको क्षमा कर दिया ।
जिसने समझ लिया है, वह नहीं समझनेवालों
को समझ लेता है ।”

जिह्वा कितना ही घी खाती है, मगर
कभी चिकनी नहीं होती, उसी तरह जगत में
रहकर भी जगत् की चिकनाहट से परे रहना
है, अलिप्त रहना है । जैसे बकरा ‘में... में...’
करता है वैसे ही मृत्युधाम में भी जीव ‘मेरा...
मेरा...’ करता हुआ जीता है, पर ज्ञानदशा के
आते ही ‘मेरा... मेरा...’ सब चला जाता है ।

७५. सीख

मरते वक्त बाप ने बेटे से कहा, "गाँव-गाँव में घर बाँधना, धूप में भटकना नहीं और मीठा भोजन खाना ।" बेटा इसका अर्थ न समझ सका, लेकिन बाप के एक वृद्ध मित्र ने इसका अर्थ समझाया—

(१) गाँव-गाँव घर बाँधना अर्थात् लोगों के साथ अच्छा संबंध रखना ।

(२) धूप में नहीं घूमना याने सुबह से सूर्यास्त तक दुकान में बैठ कर धंधा करना ।

(३) मीठा खाना अर्थात् खूब श्रम करके खाना, जिससे जो भी खाया जाय वह मीठा लगे ।

बिना श्रम किये प्राप्त पैसे की कोई कीमत नहीं है । बिना श्रम के प्राप्त पैतृक संपत्ति को पुत्र स्वच्छंदता— पूर्वक उड़ा देता है । श्रम में रस है, आनंद है, सुख है, शांति और समता है । साधु श्रम कर के ही सिद्धि प्राप्त करते हैं । इसीलिए वे 'श्रमण' कहलाते हैं । साधु श्रम करके, आत्ममंथन करके, आत्मा का गोरस बनाकर लोगों को उपदेश रूपी नवनीत देते हैं ।

७६. ममत्व का त्याग

मोह राजाने हमें ममत्व की पटरी पर चढ़ा दिया है, जिससे 'मैं और मेरा' करने में ही हमने अनंत भव गँवा दिये हैं। हमने मोहवश व्यर्थ ही संसार का भार बढ़ा दिया है इसलिए आठ दिन पहले की बात भी हम भूल जाते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों संयम बढ़ता जायेगा, त्यों-त्यों हमारी स्मृति भी तीव्र होती जायेगी। भवचक्र में चक्कर काटते-काटते हमारी सारी ताकत खर्च हो जाती है। इस ताकत को हमें एकत्र करना है, उसका सदुपयोग कर लें। मनुष्य अगर निश्चय करता है तो असंभव को भी संभव बना सकता है। इसीलिये 'नयसार' ने विकास करते-करते असंभव तीर्थकर पद को भी संभव बनाया था। मन को पवित्र बनाने के बाद ही ध्यान में एकाग्रता आ सकती है।

साधनों के बंधनरूप होने के बाद साध्य खो जाता है। जैसे-जैसे ज्ञानदशा आती है वैसे-वैसे आत्मा कर्म से मुक्त होती जाती है।

७७. दिव्यता

एक श्रावक एक साधु की बहुत भक्ति करता था । साधु समता में लीन थे । एक दिन जब साधु मग्न थे तब भैंस को स्नान कराते हुए ग्वाले के हाथों से साधु पर थोड़ा पानी गिर गया । ध्यान पूर्ण होने पर साधु ने ग्वाले को डाँटा । यह देखकर श्रावक वहाँ से चला गया ।

क्रोध का शमन होने और समता को प्राप्त होने पर साधुने ग्वाले से क्षमा माँगी । बाद में वह श्रावक भी वापस आया और साधु की भक्ति करने लगा ।

साधुने इसका कारण पूछा । श्रावक ने कहा, “आपने क्रोध किया, तब परमात्मा आपके पास से चले गये थे । याने शुभ परमाणु, प्रेम, मैत्री, क्षमा, समता चले गये थे, दिव्यता चली गई थी । अब उनके लौट आने से मैं भी लौट आया हूँ ।”

जैसा संग करोगे, वैसा ही रंग प्राप्त करोगे ।

गटर का पानी भी गंगा में मिलकर स्वच्छ हो जाता है । सज्जन दुर्जन को भी सज्जन बनाते हैं, लेकिन स्वयं गंगाजी जब सागर में जाकर मिलती है, तब उनका पानी नमकीन हो जाता है ।

७८. पुद्गल

जो भी क्रियाएँ होती हैं वे सब पुद्गल की वजह होती हैं । कार्मण और तैजस् पुद्गल की वजह से जन्म और मरण भोगना पड़ता है । यह आत्मा क्षणभर के लिए भी देह- पुद्गल के बिना रह नहीं सकती ।

आहार-संज्ञा जन्म से ही है । दूसरा जन्म अगर सुधारना है तो आहार संज्ञ को घटाते जाना चाहिए । आहार में और व्यवहार में हमारी आहार-संज्ञ अधिक काम करती है । हम पुद्गलों की वजह से संसार में परिभ्रमण करते हैं । आत्मा और पुद्गलों का संबंध अनादि है ।

आनंदघनजी को बुखार था । श्रावक उन्हें सुखशाता पूछने के लिए आये । आनंदघनजी तो अपनी निजानंद की मस्ती में भजन गा रहे थे । श्रावकों ने कहा, "आपको तो कितना बुखार है !" आनंदघनजी ने जवाब दिया, "बुखार तो पुद्गल को है, मन को नहीं, आत्मा को नहीं ।"

या पुद्गल का क्या विश्वासा ?

झूठा है सपने का वासा ।

झूठा तन धन, झूठा जोबन

झूठा है यह तमाशा ;

आनंदघन कहे सबही झूठे,

साचा शिवपुर वासा ॥

या पुद्गल का क्या विश्वासा ?

७९. साधना का रहस्य

लोहे और तांबे को पारसमणि का स्पर्श होते ही वे सुवर्ण बन जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा को भी आत्मज्ञान प्राप्त होते ही वह अमर बन जाती है। जीवनभर 'स्व' का ही दर्शन करना है। प्रत्येक क्रिया में आत्मा को याद करना है। जीवन को घोंट-घोंट कर अंतर में से आत्मजागृति को प्राप्त करना है। हर एक क्रिया आत्मजागृति के साथ होगी तो संसार की क्रियाएँ भी आत्मा को ऊर्ध्वगामी बनायेंगी और धर्म का सच्चा रहस्य तो आत्मा को मोक्ष दिलाना ही है।

मृत्यु में ही जीवन की परिणति रही है। अंधकार में जैसे प्रकाश छिपा हुआ है, वैसे मृत्यु में ही अमृत छिपा हुआ है। मृत्यु को समझ लेने के बाद जीवन को जीने में बहुत ही आनंद आता है।

जीवन गंदगी देखने के लिए नहीं, वरन् जगत के उद्यानों को देखने के लिए है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के सद्गुण देखने चाहिए, दुर्गुण या दोष नहीं। सद्गुणों को देखते-देखते हमारे अंदर भी सद्गुणों की वृद्धि होती जायेगी। दुर्गुण देखने से दुर्गुणों में वृद्धि होगी और मैत्री-प्रेम के बदले राग-द्वेष बढ़ेंगे। पाखंडी लोग तो भगवान में भी दोष ही देखते हैं।

८०. भ्रमणा

जगत् में कोई ऐसा तत्त्व नहीं है, जो मृत प्राणी को जीवित कर सके। इसलिए तन से सेवा करनी चाहिए जगत में रह कर जो इकट्ठा किया है वह लोगों को दे देना चाहिए। परलोक के लिए दान कर के कुछ बो कर जाना चाहिए। इकट्ठा कम करके दान में अधिक देना चाहिए। हमें यात्रा में चलनेवाले कुत्ते की रोटी नहीं बनना चाहिए। संघ के साथ जानेवाले कुत्ते को खूब खाना मिलता है। पर भूख जितना खाकर, बाकी खाना वह कल के लिए गाड़ देता है, क्योंकि उसे मालूम नहीं कि यह संघ तो आगे जाने वाला है। इस प्रकार जो मनुष्य भ्रम में नहीं रहता है, वह तो जो करना है आज ही कर लेता है, वह कल का विचार नहीं करता है या कुछ इकट्ठा कर के नहीं रखता है।

हम यहाँ के 'निवासी' नहीं, 'प्रवासी' हैं। यह संसार तो हमारा विश्रामगृह है। हमें यहाँ स्थिर होकर नहीं रहना है, यहाँ से तो अन्यत्र जाना है। यात्रा अनंत की है। इस संसार-यात्राएँ को अगर समाप्त करना है, तो अहिंसा, संयम, तप आदि को जीवन में उतारना होगा, आहार, निद्रा, भय, मैथुन को जीतना होगा, दान, शील, तप, भाव आदि से जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाना होगा।

'रहना नहीं देश बिराना है।'

८१. अमृत

जैन दर्शन में वेश से अधिक महत्त्व विचार को दिया जाता है । जब तक सम्यक्त्व प्राप्त न हो तब तक आत्मा की प्रगति नहीं हो सकती है । सम्यग्दर्शन संसार को पार करने के लिए नाव के समान है । सम्यक्त्व का दर्शन होते ही आत्मा का ख्याल आ जाता है । वह संसार में भले ही रहता हो फिर भी वह अनासक्त होता है । आत्मज्ञान होते ही अंतर में आनंद व्याप्त हो जाता है । भौरे को एक बार रस प्राप्त हो जाता है तो वह उसे चूसता ही रहता है, गूँजन भी नहीं करता । ज्ञानरूपी अमृत के सागर में जिसने एक बार गोता लगाया उसके लिए विषय विष के समान बन जाते हैं ।

ज्ञान ही पशु और मनुष्य के बीच अंतर बतानेवाला तत्त्व है । ज्ञान से पशु भी मनुष्य के जैसा बन जाता है । चंडकौशिक को ज्ञान प्राप्त होते ही वह आठवें देवलोक में गया । ज्ञान कर्मों को जला देता है । ज्ञान को जीवन में उतारना है । ज्ञान से इन्सान का मूल्य जाता बढ़ है । मोक्षमार्ग पर ले जानेवाला मार्गदर्शक भी ज्ञान ही है । संसार में राह बतानेवाला भी ज्ञान है । मनुष्य के जीवन का शृंगार भी ज्ञान है । मनुष्य ज्ञान से ही सुंदर लगता है ।

८२. स्वाध्याय

जो हमारे स्वजन हैं, वे हमारी आत्मा का अहित करते हैं और जो पराये हैं वे ही आत्मा का उत्थान करते हैं। पराये लोग हमें नींद में से जगाते हैं, ममतावाले लोग हमें मूर्छा में डालते हैं।

रोग, मुसीबत, दुःख इत्यादि आत्मा के कल्याण के लिए आते हैं। जिस शरीर से कर्म बाँधते समय विचार नहीं करते हैं, उस शरीर से रोग भोगते समय क्यों विचार करना चाहिए ?

सुख और दुःख को समान मानना चाहिए। मन तैयार हो जाय तो दुःख छिप जाते हैं। मन रोग में लग जाय, वह मन पर आधिपत्य जमा लेता है। रोग के आने पर मन को स्वाध्याय में लगा देना चाहिए।

एक बार सद्गुण की राह पकड़ लें, तो फिर कभी आप दुर्गुण की राह पर नहीं जायेंगे। हमेशा थोड़ा थोड़ा चलो तो जरूर गाँव आयेगा, लेकिन वह मार्ग सही होना चाहिए। जीवन में सच्चे मार्ग पर चलने वाले पथिक की तरह सही मार्ग पर चलोगे, तो जरूर ध्येय को प्राप्त कर सकोगे।

८३. कुलछी (चम्मच)

दूधपाक का स्वाद चम्मच को नहीं मिलता, लेकिन एक बूँद भी अगर जबान पर रखेंगे तो जबान को स्वाद लग जायेगा। उसी प्रकार आँख कुछ नहीं करती है। आँख तो साधन है, लेकिन आँख के पीछे रही हुई दिव्य आत्मा ही सब कुछ देखती है, सब अनुभव करती है। आँखें अच्छा देखे इसके लिए विवेक रखना चाहिए। अन्यथा वह प्रतिक्षण कर्मबंधन करती ही रहती है। शरीर से हम कर्म बाँधते हैं और शरीर तो जलकर भस्म हो जाता है लेकिन कर्म भोगने पड़ते हैं, आत्मा को ! सम्यक्-दृष्टि आत्मा प्रतिपल कर्म की निर्जरा करती रहती है, क्योंकि उसे किसी वस्तु में आसक्ति नहीं होती। तीर्थकर सब कुछ करते हैं, खाते-पीते हैं, फिर भी कर्मबंधन नहीं, कर्मों की निर्जरा करते हैं।

हमें अपनी आशा को अमर बनानी है, आंतरिक वैभव को विकसित करना है। इलेक्ट्रिसिटी के साथ संलग्न तार महान ज्योतिरूप बन जाता है, उसी प्रकार जब हमारी आत्मा परमात्मा के साथ जुड़ जायेगी तब वह भी एक दिन परमात्मा बन जायेगी।

८४. प्रमाद

जीवन में जो प्रमाद है, वही हिंसा का कारण है। जो आदमी अप्रमत्त है, जागृत है, वह कभी हिंसा नहीं करता। अनजाने में हिंसा हो भी जाय तो उसका भी उसे पारावार दुःख होता है।

भगवान महावीर गौतम स्वामी को बार बार कहते हैं, “गौतम ! तू एक क्षण का भी प्रमाद मत कर।” प्रमादरूपी नशा अपनी आत्मा का एवं हमारे समागम में आनेवालों का नाश करता है। जगत के पापों की, शुरूआत प्रमाद से होती है। धर्म करनेवाली आत्मा के लिए जागृति नितांत आवश्यक है।

हम पाँच तिथियों में हरी सब्जी नहीं खाते हैं, इसलिए हम हिंसा नहीं करते हैं ऐसा नहीं समझना चाहिए।

हिंसा बाहर की स्थूल वस्तु है, प्रमाद आत्मा की वस्तु है। प्रमाद होता है तभी हिंसा होती है।

८५. सफलता

दूज का चंद्र छोटा होता है, इसलिए दुनिया उसका दर्शन करने जाती है। उसमें नम्रता है इसलिए वह धीरे धीरे बड़ा होता जाता है। वह अमावास्या की लघुता में से पूर्णिमा की गुरुता की ओर बढ़ता जाता है। बड़ा होने के बाद उसे छोटा बनना पड़ता है जो छोटा है, उस को छोटा नहीं होना पड़ता। छोटे बालक को दुनिया प्यार करती है, बड़े को कोई प्यार नहीं करता। हमारे शरीर में मस्तक सबसे बड़ा माना जाता है और पाँव सबसे छोटे। किन्तु पाँव की रज-चरणरज ली जाती है, मस्तक की नहीं। संसार में पानी के बुलबुले की तरह जो बड़े होते हैं, वे नष्ट भी जल्दी होते हैं। बारह-बारह मास की उग्र तपश्चर्या के बाद भी बाहुबली को केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता है। लेकिन "हे मेरे वीर ! हाथी पर से नीचे उतरो" सुनते ही उनके अहंकार का नाश हुआ, नम्रता आई। और जैसे ही उन्होंने छोटे बंधु-साधुओं की वंदना के लिए कदम उठाया वैसे ही केवल-ज्ञान समुत्पन्न हुआ। जहाँ नम्रता है, लघुता है, वहाँ सफलता है, उन्नति है।

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

एक परिचय

जिनबिम्ब एवं जिनागम की आराधना के समन्वय को साधता हुआ श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र भारत देश के गुजरात राज्य में अहमदाबाद एवं गांधीनगर के बीच आकार ग्रहण कर रहा है।

परम पूज्य गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमत् कैलाससागरसूरीश्वरजी के पावन आशीर्वाद एवं परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमत् कल्याणसागरसूरीश्वरजी के शिष्य प्रवर आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागर सूरीश्वरजी की प्रेरणा एवं मार्ग दर्शन से यह संस्था निरंतर प्रगति कर रही है।

संस्था के आयोजन

महावीरालय : हृदय में अलौकिक धर्मोल्लास जगानेवाला अतिभव्य जिन प्रासाद यहाँ आकार ग्रहण कर चुका है। तीन-तीन गगनचुंबी शिखरों से सुशोभित इस अनोखे जिनालय में चरमतीर्थपति भगवान श्रीमहावीर स्वामी मूलनायक के रूप में प्रतिष्ठित है।

इस जिनमंदिर की रचना में ऐसी खूबी रखी गई है कि आचार्य देव श्रीकैलाससागरसूरीश्वरजी के कालधर्मदिन, २२ मई को हर वर्ष उनके अग्निसंस्कार के समय (दोपहर २-०७ बजे) तीन मिनट के लिए भगवान महावीरस्वामी का तिलक सूर्य किरणों से देदिप्यमान हो जाता है।

गुरुमंदिर : पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमत् कैलाससागरसूरीश्वरजी म.सा. के पावन देह के अंतिम संस्कार के पुण्यस्थल पर पूज्यश्री की स्मृति में संगमर्मर का कलात्मक गुरु मंदिर निर्मित किया जा रहा है। स्फटिकरत्न से निर्मित अनंतलब्धि-निधान श्री गौतमस्वामिजी की प्रतिमा एवं स्फटिकरत्न से ही निर्मित वन्दनीय गुरुचरणपादुका इस भव्य गुरुमंदिर में प्रतिष्ठित की जाएगी।

आराधनाभवन : आराधकों की आत्मारोधना हेतु निर्मित इस आराधना भवन में मुनिभगवंतो को भी ज्ञानोपासना हेतु स्थिरता करने की सर्व अनुकूलताएँ उपलब्ध रहेगी। मुनिभगवंत यहाँ स्थिरता कर के केन्द्र के प्रांगण में स्थित “आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञान मंदिर” के अमूल्य ग्रंथों का अध्ययन, संशोधन आदि कर सकेंगे।

मुमुक्षु कुटीर : ज्ञान-पिपासुओं के लिए ज्ञान मंदिर के समीप ही शांत एवं सुरम्य वातावरण में ज्ञानाभ्यास की संपूर्ण सुविधाओं से युक्त मुमुक्षु कुटीरों का निर्माण किया जा रहा है। संस्था के नियमानुसार इसमें रह कर विद्यार्थी-मुमुक्षु सुव्यवस्थित रूप से यहाँ के विद्वानों के पास जैन दर्शन आदि संबंधी उच्च स्तरीय अभ्यास कर सकेंगे।

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञान मंदिर : यह खुद एक विशाल संस्था का कार्य करेगा। एक समृद्ध पुस्तकालय के अलावा इसके अन्तर्गत कार्यरत वाचनालय, संशोधन केन्द्र, संग्रहालय एवं कलादीर्घा ज्ञान मंदिर की उपयोगिता को और अधिक सार्थक बनाएँगे।

पुस्तकालय : इस पुस्तकालय में अभ्यासीयों के उपयोग हेतु जैन दर्शन न्याय, व्याकरण, इतिहास आदि की १००,००० से अधिक हस्तलिखित प्राचीन प्रतों, १००० से अधिक प्राचीन ताडपत्रीय ग्रंथों के साथ-साथ ५०,००० से अधिक मुद्रित पुस्तकों एवं प्रतों का संग्रह किया गया है। इनमें से काफी ग्रन्थ तो आज अलभ्य माने जाते हैं। ऐसे ग्रंथों की प्राप्ति का प्रवाह निरंतर जारी है। इन सभी की सूची के कम्प्यूटरीकरण का कार्य प्रगति पर है। ताडपत्रीय एवं हस्तलिखित ग्रंथों को बाहरी वातावरण से मुक्त खास वैज्ञानिक ढंग से निर्मित कक्षों में रखा जाएगा, जिससे वे दीर्घ काल तक सुरक्षित रह सकें।

वाचनालय : इस खण्ड में देश-विदेश से प्रकाशित होने वाली शोधपत्रिकाएँ, सात्विक सामयिक एवं बोधदायक पुस्तकों को रखा जाएगा, जिससे यहाँ रहने वाले विद्वानों एवं दर्शनार्थी आनेवाले यात्रिकों को इनका फायदा मिल सके।

संशोधन केन्द्र : यहाँ पर संशोधन कार्य हेतु ऐसी विशिष्ट सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँगी कि जिससे यहाँ आने वाला संशोधनार्थी अपने मनपसंद विषय के चयन से ले कर कम समय में उच्छ गुणवत्ता युक्त संशोधन का कार्य बड़ी आसानी से कर सकेगा।

संग्रहालय : यहाँ पर प्राचीन जैन चित्रों, विज्ञप्तिपत्रों, पटों, धातु-पाषाण-काष्ठ आदि की बेनमून शिल्पाकृतियों के साथ-साथ अर्वाचीन कला कृतियों का अभ्यासार्थ प्रदर्शन रखा जाएगा।

कलादीर्घा : ज्ञानमंदिर के इस खण्ड में भगवान महावीर स्वामी के विविध जीवन प्रसंगों को जन सामान्य

के दर्शनार्थ बड़े ही प्रभावशाली ढंग से मूर्तिमंत किया जाएगा। साथ ही इसमें प्रकाश एवं श्राव्य माध्यमों का यथोचित उपयोग किया जाएगा।

इन सब के अलावा श्रमणी उपाश्रय, यात्रीक गृह, भोजन गृह, होमीयोपेथीक औषधालय, अन्नदानक्षेत्र आदि का भी आयोजन किया गया है।

मानवजीवन को ज्योतिर्मय बनाने के अनेक कार्यो में गतिशील आपकी अपनी ही इस संस्था की प्रवृत्तियों में आप भी तन मन धन से सहयोगी बन सकते हैं। इस पंजीकृत संस्था (A/२६५९) को आयकर धारा ८०-G के तहत कर मुक्ति मिली हुई है।

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

मुख्य कार्यालय :

C/o. हेमन्त ब्रदर्स
सुपर मार्केट, आश्रम रोड,
अहमदाबाद - ३८०००९

संस्था का पता :

कोबा,
जि. गांधीनगर - ३८२००९,
गुजरात, भारत

श्री अरुणोदय फाउन्डेशन - एक परिचय

इतिहास की कुछ कड़ियाँ : जैन साहित्य व संस्कृति के प्रचार-प्रसार, साधर्मिक बंधुओं की गुप्त रूप से भक्ति, जन सेवा आदि अनेक भावनाओं को मूर्तिमन्त करने की तीव्र इच्छा से कुछ उत्साही सज्जनों द्वारा 'श्री अरुणोदय फाउन्डेशन' नामक संस्था की स्थापना आज से करीबन ९ साल पूर्व (दिनांक १६-१-८१ के दिन) गुजरात के प्रमुख औद्योगिक शहर अहमदाबाद में गुजरात राज्य के वर्तमान मुख्यमंत्री माननीय श्री **चीमनभाई पटेल** के कर कमलों से की गई, जिसे शासन प्रभावक आचार्य श्री **पद्मसागर सूरीश्वरजी महाराज** का आशीर्वाद तथा उनके विद्वान शिष्य ज्योतिषज्ञाता मुनिराज श्री **अरुणोदयसागरजी म.सा.** की प्रेरणा भी प्राप्त हुई।

संस्था की मुख्य गति-विधियाँ : अपने ओजस्वी प्रवचनों के माध्यम से जिन्होंने जन-मानस पर अमिट छाप छोड़ी है ऐसे प्रसिद्ध प्रवचनकार आचार्यदेव श्री **पद्मसागर सूरीश्वरजी म.सा.** के प्रवचनांशों को पुस्तक रूप में समय-समय पर प्रकाशित करना।

सात्विक/सदाचार/संयम आदि सुसंस्कारों की जड़ों को ठोस बनाने वाले प्रेरणादायी लेखों को संकलित कर 'कोबा' पत्रिका के रूप में प्रकाशित करना।

....और एक **जैन समाज का अपने आप में अकेला-अनुठा प्रकाशन :**

जब से श्री महेन्द्र जैन पंचांग का प्रकाशन बंद हुआ तब से 'पंचांग' के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न अनेक महानुभावों/महापुरुषों ने इस क्षति को पूर्ण करने के

अनेक प्रयास किये । मगर वे सारे प्रयास मुख्यतः आर्थिक एवं अन्य कारणों से शीघ्र ही निष्प्राण हो गये । जैन समाज का स्वयंका एक भी पंचांग न रहा । ऐसी स्थिति में पूज्य श्री अरुणोदयसागरजी म.सा. ने पूज्य गुरुजनों की कृपा से इस भारी क्षति को भरने का दुःसाहस किया जिसका परिणाम आज आपके सामने है । आप सभी के सहयोग से संस्था आज एक ऐसा प्रकाशन करती है जो समूचे जिनधर्मावलम्बियों का ही मार्गदर्शक नहीं, अपितु जैनेतर बंधुओं में भी इतना ही प्रचलित एवं विश्वसनीय बना है । हर साल संस्था-

श्री सीमन्धर प्रत्यक्ष पंचांग (गुजराती)

एवं

श्री अरुणोदय प्रत्यक्ष पंचांग (हिन्दी)

प्रकाशित करती है । यह संस्था का गौरव है ।

संस्था एक लघु पंचांग का प्रकाशन भी करती है जो वर्तमान में श्रमण भगवन्तों में अत्यंत लोकप्रिय है ।

निम्न प्रकार के सहयोग आप से अपेक्षित हैं ।

- | | |
|---|---------------|
| (१) पेट्रन | — ५,५५५ रुपये |
| (२) आर्जावन सदस्य | — १५०० रुपये |
| (३) पंचांग निभाव फंड | — ११११ रुपये |
| (४) पंचांग एवं पत्रिका में विज्ञापन आदि सहयोग । | |

दान दाताओं के सूचनार्थ : श्री अरुणोदय फाउण्डेशन आयकर धारा ८० G के तहत कर मुक्त प्राप्त है जिसका क्रमांक E/४३७३ है ।

संस्था का पता

श्री अरुणोदय फाउण्डेशन

६/२१, शीतलनाथ फ्लैट-१

खानपुर, अहमदाबाद-१

संस्था के प्रमुख प्रकाशन

*	१.	प्रतिबोध	द्वितीयावृत्ति	हिन्दी
	२.	मोक्ष मार्ग में बीस कदम	"	"
	३.	मिति में सब्व भूएसु	"	"
*	४.	जीवन दृष्टि		"
	५.	संशय सब दूर भये		"
	६.	हे नवकार महान		"
*	७.	प्रवचन पराग		"
	८.	कर्मयोग		"
	९.	संवाद की खोज		"
*	१०.	चिन्तन नी केडी		गुजराती
*	११.	जीवननों अरुणोदय भाग १ व २		"
*	१२.	प्रेरणा		"
*	१३.	पाथेय		"
	१४.	प्रवचन पराग		"
	१५.	आतम पाम्यो अजवाळुं		"
	१६.	श्री श्रुतज्ञान अमीरस धारा (स्वाध्याय पुस्तक)		
	१७.	THE ESSENTIAL OF JAINISM		
	१८.	AWAKENING		
	१९.	GOLDEN STEPS TO SALVATION		
	२०.	BEYOND DOUBT		
	२१.	THE LIGHT OF LIFE		
**		श्री सीमंधर प्रत्यक्ष पंचांग (गुजराती)		
**		श्री अरुणोदय प्रत्यक्ष पंचांग (हिन्दी)		
		भीमसेन चरित्र (हिन्दी) प्रेस में		
	*	पुस्तक अनुपलब्ध		
	**	वार्षिक प्रकाशन		

